अंक : 93
(अप्रैल-जून, 2001)

राजभाषा भारती

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

राजभाषा भारती

वर्ष : 23 अंक : 93
जून, 2001
निःशुल्क वितरण के लिए

संपादकीय

'राजभाषा भारती' के अंक 93 (अप्रैल-जून, 2001) को अपने सुधी पाठकों को प्रस्तुत करने में हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। विभाग का सदैव यह प्रयास रहा है कि राजभाषा भारती की साज-सज्जा, कलेवर और आवरण के साथ-साथ पत्रिका में संकलित की जाने वाले सामग्री को नया रूप और आयाम दिया जाए। पूर्व में प्रकाशित पत्रिका के अंकों के संबंध में हमें अपने पाठकों से जो प्रतिक्रियाएं मिलती रही हैं उनसे निश्चित ही हमारा उत्साह-वर्धन हुआ है जिसके लिए हम अपने पाठकों के आभारी हैं।

प्रस्तुत अंक में जिन लेखों को सम्मिलित किया गया है, उनमें से प्रो. कैलाश चंद्र भाटिया एवं रचना भाटिया का लेख "प्रौद्योगिकी और हिंदी शिक्षण" वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक प्रासंगिक है। लेख में हिंदी शिक्षण के बारे में कम्प्यूटर, साफ्टवेयर और विभिन्न संस्थाओं द्वारा हिंदी शिक्षण के लिए तैयार की गई दृश्य-श्रव्य सामग्री के अनुप्रयोग जैसी तथ्यात्मक जानकारियां दी गई हैं। डा. ओम विकास के लेख "जापान की प्रौद्योगिक संस्कृति" में इस बात का विवरण दिया गया है कि अपने संकल्प, श्रम और सुनियोजित व्यवस्था से जापान किस प्रकार अर्थशक्ति के रूप में उभरा। लेख में उन कारकों का निरूपण किया गया है जिन्हें अपना कर जापान का नाम अग्रणी देशों में गिना जाने लगा। राष्ट्रीय स्तर पर टेक्नालाजी विकास और उसका बाजार बढ़ाने की योजना बनाई गई। बड़े बाजारों के साथ-साथ छोटे उद्योगों को जोड़ा गया परन्तु इन सबके पीछे इसकी सफलता का सबसे बड़ा राज था कार्यक्षेत्र में जापानियों की ईमानदारी और यही वे लक्षण हैं जो जापान के लोगों में प्रौद्योगिक संस्कृति में पाए जाते हैं अर्थात् प्रौद्योगिकी नवाचार और काम का नशा। डा. आर. रमेश आर्य के लेख "बंजारा लोक साहित्य का

1464 HA/2001—1

सांस्कृतिक अध्ययन'' में बंजारों की जीवन शैली और सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया गया है। लेख में इस बात का उल्लेख किया गया है कि लोकगीतों के माध्यम से बंजारों की श्रमशील जीवन परिस्थितियां, सक्रिय सामाजिक संघर्ष और प्रकृतिजन्य विषमताओं से संबंधित अभिव्यक्तियां परिलक्षित होती हैं।

अजयेन्द्र नाथ त्रिवेदी का लेख ''भारतीय संस्कृति को उत्तर पूर्वांचल का योगदान'' में उत्तर पूर्व के सभी राज्यों के प्रकृति सौंदर्य, उनकी संस्कृति और आर्थिक विकास में इन राज्यों के योगदान का सांगोपांग विवेचन मिलता है।

'राजभाषा भारती' के अंक 92 में डा. राजकुमारी शर्मा के लेख ''रामचरित मानस में तांत्रिक संकेत भाग-1'' को शामिल किया गया था। उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए लेख का अंतिम और भाग-2 इस अंक में संकलित है। डा. कमलेश रानी अग्रवाल का लेख ''औद्योगिक उदारीकरण : दशा-दिशा'', सोम प्रकाश सेठी का लेख ''राजभाषा प्रबंध और व्यावसायिक संप्रेषण'', धृति नेमा का लेख ''उत्पादकता में सुधार : बदलते परिवेश के साथ'', राजन मिश्रा का लेख ''स्वैच्छिक संगठन : ग्रामीण विकास के सर्वोत्तम अभिकर्त्ता'', दान बहादुर का लेख ''सूचना एवं सांस्कृतिक विकास'' आदि अत्यधिक सूचनाप्रद हैं जिनसे निश्चित ही हमारे पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा।

प्रस्तुत अंक में देश के विभिन्न भागों में हुई राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियों का समावेश भी किया गया है। आशा है कि पत्रिका का यह अंक पाठकों की अपेक्षाओं के अनुरूप खरा उतरेगा और उनके लिए संग्रहणीय सिद्ध होगा।

उप संपादक :
(सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा)
दूरभाष : 4698054

संपादक :
(डा. विजय पी. गोयल)
दूरभाष : 4617807

(पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।)

पत्र-व्यवहार का पता :
संपादक, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, लोकनायक भवन (दूसरा तल) खान मार्किट, नई दिल्ली-110003
ई-मेल : nicdol@alpha.nic.in
वेबसाइट : dol.nic.in

राजभाषा भारती

अंक-93 (अप्रैल-जून, 2001)

विषय-सूची

क्रम सं.	लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	प्रौद्योगिकी और हिंदी शिक्षण	प्रो. कैलाश चंद्र भाटिया एवं कु. रचना भाटिया	1
2.	जापान की प्रौद्योगिक संस्कृति	डा. ओम विकास	14
3.	बंजारा लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डा. आर. रमेश आर्य	24
4.	भारतीय संस्कृति को उत्तर पूर्वांचल का योगदान	श्री अजयेन्द्र नाथ त्रिवेदी	27
5.	रामचरित मानस में तांत्रिक संकेत भाग-2	डा. राजकुमारी शर्मा	33
6.	औद्योगिक उदारीकरण : दशा-दिशा	डा. कमलेश रानी अग्रवाल	40
7.	राजभाषा प्रबंध और व्यावसायिक संप्रेषण	श्री सोम प्रकाश सेठी	44
8.	स्वैच्छिक संगठन : ग्रामीण विकास के सर्वोत्तम अभिकर्ता	श्री राजन मिश्रा	52
9.	उत्पादकता में सुधार : बदलते परिवेश के साथ	सुश्री धृति नेमा	56
10.	सूचना एवं सामुदायिक विकास	श्री दान बहादुर सिंह	65
11.	उर्दू काव्य शास्त्र में काव्य हेतु विवेचन	डा. रामदास 'नादार'	71
12.	तालाब बदल सकते हैं तस्वीर देश की	श्री रामदत्त 'अजेय'	80
13.	राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियां	संकलन : अनुपमा परमार	86
14.	राजभाषा विभाग द्वारा प्रायोजित हिंदी कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम—वर्ष 2001-02		98

प्रौद्योगिकी और हिंदी-शिक्षण

—प्रो० कैलाश चन्द्र भाटिया एवं रचना भाटिया

शिक्षण में, विशेष रूप से भाषा-शिक्षण में सहायक सामग्री का विशेष महत्व है। भाषा के जीवंत रूप को, मौखिक रूप को, सिखाने के लिए दैनिक प्रयोग में आनेवाली भाषा को ही प्राथमिकता दी जाती है। इसके लिए श्रव्य, दृश्य, श्रव्य-दृश्य उपकरण काफ़ी प्रभावी सिद्ध होते हैं। श्यामपट्ट, चुंबकीय पट्ट, चित्र-रेखाचित्र, फ़ोटो, कार्टून-पोस्टर, प्रतिकृति (माडल), सारणी (चार्ट्स), मानचित्र आदि का प्रयोग तो भाषा-शिक्षण में बहुत पहले से किया जा रहा है। बाद में प्रक्षेपक (प्रोजेक्टर), स्लाइड प्रक्षेपक और अपारदर्शी प्रक्षेपकों के प्रयोग भी बढ़े। अब तो फिल्म स्ट्रिप, लिंग्वाफ़ोन, लिंग्वारिकॉर्ड, टेपित सामग्री-कैसेट, चलचित्र आदि के प्रयोग भी बढ़ गए। श्रव्य सामग्री के साथ-साथ श्रव्य-दृश्य अथवा दृश्य-श्रव्य सामग्री (वीडियो) का प्रयोग निरंतर वृद्धि पर है। तेजी से हर क्षेत्र में कंप्यूटर का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

अभिक्रमित अध्ययन (प्रोगाम्ड लर्निंग) पर आधारित सामग्री को अब 'प्रौद्योगिकी' की संज्ञा दे दी गई है। प्रशासन में बहुप्रयुक्त हिंदी की अभिव्यक्तियों पर जो प्रोग्रामों (पी.एल.) की सीरीज़ तैयार की गई जो 'नेमी कार्यालय टिप्पणियां' दो भागों में राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) से प्रकाशित हुई है। इन प्रोग्रामों का स्वयं शिक्षण की दिशा में विशेष महत्व है।

शिक्षण-मशीन और भाषा प्रयोगशालाओं का ज़माना अब पुराना पड़ गया। अनेक स्थानों/संस्थानों में भाषा प्रयोगशालाएं आज भी विद्यमान हैं। 'बेतार' (वायरलेस) की भाषा प्रयोगशालाएं दो स्थानों पर लगाई गईं—लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी तथा भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर। अब कंप्यूटर के व्यापक प्रयोग से मल्टीमीडिया (बहुसंचारीय) सामग्री तेजी से तैयार हो रही है।

दृश्य-श्रव्य सामग्री में फ़िल्म सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है। देवनागरी लिपि के प्रयोग और शिक्षण के लिए अनेक फ़िल्मों का निर्माण हो चुका है।

देवनागरी लिपि-भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर।

नागरी लिपि I तथा II-राष्ट्रीय शैक्षिक प्रशिक्षण अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

देवनागरी शिक्षक—केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

कंप्यूटर के विकास के साथ अनेक क्षेत्रों में उसकी उपयोगिता स्पष्टत: सिद्ध होती जा रही है। मुख्यत: निम्नलिखित क्षेत्रों में उसकी उपादेयता बढ़ रही है :—

1. **मशीनी अनुवाद :** इस दिशा में सर्वाधिक प्रगति जापान में हुई है। इसका विस्तृत ऐतिहासिक विवरण भारत सरकार के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित पुस्तक "*हिन्दी विकास और संभावनाएं*" (पृ० 305—323) में दिया गया है। इस दिशा में दो विद्वान भाषाविद् पर्याप्त सक्रिय हैं—डा. सूरज भान सिंह तथा डा. विजय कुमार मल्होत्रा। डा. मल्होत्रा ने "*कंप्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग*" पुस्तक में दो अध्यायों में इसका विवेचन प्रस्तुत किया है :

—संदर्भमुक्त या संदर्भयुक्त व्याकरण का प्रत्यय और वृक्ष संलग्न व्याकरण।

—टैग के माध्यम से हिंदी-अंग्रेजी और अंग्रेजी-हिंदी का कोशीय अंतरण।

इस दृष्टि से प्रो. सूरज भान सिंह ने हिंदी का 'वृक्ष व्याकरण' (टैग) तैयार किया है।

भारतीय भाषाओं में मशीनी अनुवाद का समुचित विकास भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई. आई. टी.) कानपुर में संभव हुआ है। यह पद्धति पाणिनीय पद्धति पर आधारित है जिसको 'अनुसारक' की संज्ञा दी गई है। इसके द्वारा हिंदी-कन्नड़-हिंदी में अनुवाद संभव है। हैदराबाद स्थित केन्द्रीय विश्वविद्यालय के सहयोग से "हिंदी-तमिल, तेलुगु, मलयालम" अनुवाद की दिशा में पर्याप्त सफलता मिली है। अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद पर कई स्थानों पर कार्य प्रगति पर है जिनमें से 'मंत्र' उल्लेखनीय है।

2. **भाषा-शिक्षण/अधिगम :**

भाषा-शिक्षण के संदर्भ में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा; सी-डेक, पुणे तथा कई व्यक्तिगत/संस्थानगत प्रयासों का विवरण आगे दिया जा रहा है।

3. **मानवमशीन इंटरफेस प्रणाली :**

देवनागरी में मुद्रित पाठ के लिए सी-डेक पुणे में इस प्रणाली का विकास किया जा रहा है।

बोलचाल की हिंदी के लिए सात सौ शब्दों का वाक् डाटाबेस 'सीरी' (CEERI), नई दिल्ली में विकसित किया गया है।

श्रव्य-दृश्य (वीडियो) विधि :

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) नई दिल्ली के पत्राचार पाठ्यक्रम के तत्वाधान में हिंदीतर भाषा-भाषियों तथा विदेशियों के लिए पत्राचार से अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। सन् 1970-71 में बोलचाल की हिंदी के पाठ्यक्रम के रूप में **'वार्तालाप'** पर आधारित सामग्री तैयार हुई जिसको **'लिंग्वा रिकार्ड'** (विश्वप्रसिद्ध संस्था

लिंग्वाफ़ोन के तत्वाधान में तैयार **हिंदी रिकॉर्ड्ज़** पृथक् हैं।) के रूप में उपलब्ध कराए गए। यही सामग्री बाद में लिंग्वा रिकार्ड्ज़ के साथ-साथ कैसेटों पर भी उपलब्ध कराई गई।

इस विभाग के तत्वाधान में ही विभिन्न व्याकरणिक बिंदुओं पर दृश्य-श्रव्य (वीडियो कैसेट) भी तैयार किए गए हैं। अब तक तैयार **'वीडियो कैसेट'** का विवरण इस प्रकार है :

1. **वीडियो कैसेट—1** (लर्न हिंदी)

वैल्कम टू इंडिया

इस कैसेट में विभिन्न परिस्थितियों में वार्तालाप के लिए आवश्यक हिंदी वाक्यों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अहिंदी भाषियों और विदेशियों द्वारा होटल में, बैंक में, बाजार में, रेस्तरां में किसी अपरिचित से मिलते समय आवश्यक जीवन कार्यों में हिंदी प्रयोगों को सामान्य वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

2. **वीडियो कैसेट—2**

बातें करें शुरू (आप, तुम और तू) :

मध्यम पुरुष के विविध प्रयोगों को दिखाया गया है। मध्यम पुरुष के लिए तीन सर्वनाम प्रयोग में लाए जाते हैं—**'तू'**, **'तुम'** और **'आप'**। छोटे व्यक्तियों (अवस्था में), साधारण व्यक्तियों, अति निकट के प्रियंजनों तथा भगवान के लिए 'तू' का प्रयोग किया जाता है। इसके बहुवचन रूप 'तुम' का प्रयोग अपने से छोटा, अपने बराबर वालों अथवा आत्मीय व्यक्तियों के लिए होता है। अब तो स्थिति यह है कि **'तू'** का प्रयोग प्राय: नहीं किया जाता और 'तुम' का प्रयोग भी एकवचन में होने लगा है। **'आप'** का प्रयोग विनम्रता तथा आदर का भाव प्रदर्शित करता है जिसका प्रचलन निरंतर बढ़ रहा है।

3. **वीडियो कैसेट-3**

कर्त्ता और क्रिया का मेल (बीच-बीच में 'ने' का खेल) :

वाक्य संरचना के तीन महत्वपूर्ण अंग हैं--कर्त्ता, कर्म और क्रिया। कर्त्ता और क्रिया की अन्विति को तथा 'ने' परसर्ग द्वारा क्रिया के रूप-परिवर्तन को समझाया गया है। भूतकालिक वाक्य बनाते समय कर्त्ता और क्रिया के तालमेल को समझने की ओर ध्यान रखा गया है। 'ने' परसर्ग का प्रयोग सकर्मक भूतकालिक क्रिया के साथ होना है। कर्त्ता में 'ने' परसर्ग जुड़ जाने पर क्रिया कर्म के अनुसार रूप बदलती है। रोचक ढंग से सब कुछ बनाया गया है।

4. **वीडियो कैसेट-4**

वाक्य में 'को' का योग प्रकट करें विविध प्रयोग :

हिंदी वाक्यों में 'को' के प्रयोग के नियमों को सरल एवं रोचक ढंग से समझाया गया है। 'को' का प्रयोग हिंदी वाक्यों में चेतन कर्म के साथ होता है। हिंदी में विभिन्न स्थितियां हैं जहां

कर्त्ता के साथ 'को' का प्रयोग होता है; जैसे—शारीरिक कष्ट, रोग बताने में, पसंद, रुचि आदि प्रकट करने में। जानना, मालूम होना आदि के अर्थों में भी को का प्रयोग होता है।

5. वीडियो कैसेट-5

हिंदी में लिंग का आधार

थोड़ा व्याकरण थोड़ा व्यवहार

हिंदी में लिंग की समस्या जटिल है फिर भी इसमें रोचक ढंग से नियमों का निर्धारण किया गया है। शुद्ध हिंदी लिखने। बोलने के लिए लिंग का ज्ञान अनिवार्य है। वाक्य में संज्ञा और क्रिया का लिंग वाक्य में प्रयुक्त 'का', 'की'; 'मेरा'-'मेरी', जैसा सर्वनाम रूप तथा 'बड़ा'-'बड़ी' जैसे विशेषण रूपों से समझा जा सकता है। 'ई' से अंत होने वाले शब्द प्रायः स्त्री लिंग होते हैं (कुछ उपवादों—दही, घी, जी, को छोड़कर)। भाववाचक संज्ञा शब्द (-पा, -पन, -आव आदि से अंत होने वाले) प्रायः पुंलिंग होते हैं।

6. वीडियो कैसेट-6

हिन्दी में 'तो', 'भी' और 'ही'

प्रयोग कीजिए सही सही

अव्यय 'तो', 'भी', 'ही' के प्रयोगों को समझाया गया है जिनके प्रयोग से वाक्य के अर्थ और भाव तो बदल जाते हैं किंतु रूप नहीं बदलता। किसी बात पर जोर देने, निश्चय, आग्रह का भाव व्यक्त करने के लिए 'तो' का प्रयोग किया जाता है। 'भी' का प्रयोग तुलना व समानता के लिए तथा वाक्य में बल देने के लिए किया जाता है। 'ही' निश्चयात्मक भाव प्रकट करता है। कभी किसी कार्य के तुरंत होने या घटने का भाव भी 'ही' से व्यक्त होता है।

7. वीडियो कैसेट-7

मुख्य क्रिया के साथ रंजक क्रिया

रंजक क्रिया मुख्य क्रिया के अर्थ को प्रभावित करती है। 'आना', 'जाना', 'लेना', 'देना', 'उठना', 'बैठना' मुख्यतः रंजक क्रिया का काम करती हैं। संयुक्त क्रिया के इस रूप पर विस्तार से चर्चा है।

कुछ विश्वविद्यालयों ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किए हैं; जैसे देवी अहिल्याबाई विश्वविद्यालय, इन्दौर के दृश्य-श्रव्य केंद्र द्वारा विदेशियों को ठीक उच्चारण सिखाने के लिए **'वर्णमाला के तीन पाठ'** शीर्षक से तैयार किए गए हैं। ये कैसेट शुद्ध उच्चारण सिखाने की दिशा में प्रयास है।

राष्ट्रीय शैक्षिक, अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली के तत्वाधान में दृश्य-श्रव्य विभाग द्वारा हिंदीतर प्रदेशों के हिंदी अध्यापकों के लिए भी वीडियो कैसेट तैयार किए गए हैं।

केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा भी इस दिशा में परियोजना तैयार की गई है जिसके अनुसार भाषा प्रौद्योगिकी एकक ने **'शादी की तैयारी'** वीडियो फिल्म का निर्माण किया है।

यह वीडियो फिल्म विदेशी भाषा-भाषी छात्रों तथा अन्य भाषा-भाषी छात्रों को भारतीय संस्कारों का परिचय देने हेतु तैयार की गई। इस शृंखला में भोजन-व्यवस्था गहनों की खरीदारी, कपड़ों की खरीदारी आदि भी शामिल हैं।

इस वीडियो के दो भाग हैं :

प्रथम — शादी की तैयारी के समय भोजन-व्यवस्था के लिए की जा रही चर्चा का विवरण है।

द्वितीय — भारतीय व्यंजनों की जानकारी है साथ में सांस्कृतिक टिप्पणियां भी हैं।

मुख्य बात यह है कि पारिवारिक चर्चा में रिश्तों की जानकारी दी गई है और संबोधनों के प्रयोग पर भी उचित प्रकाश डाला गया है।

कंप्यूटर साधित शिक्षण :

आज से एक दशक पूर्व कंप्यूटर साधित शिक्षण पर दिनांक तीन जून 1988 को इलैक्ट्रॉनिकी विभाग के सहयोग से बैठक आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता श्री भा. ना. भागवत ने की। चर्चा में अनेक वैज्ञानिकों ने भाग लिया। डा. ओम विकास के सक्रिय सहयोग से कुछ संस्तुतियां तब ही कर दी गईं :

1. हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए टेक्नालॉजी के समन्वित विकास की ओर प्रयोग के लिए **"भारतीय भाषा टैक्नोलॉजी मिशन"** आरंभ किया जाए। इस दिशा में कार्यरत संस्थाओं को मिलाकर उपयोगी टेक्नालॉजी का विकास और प्रसार संभव होगा।

2. कंप्यूटर शैक्षिक साफ़्टवेयर का विकास भारतीय भाषाओं में हो। यह सामान्य, व्यावसायिक और विकलांग शिक्षण की आवश्यकता के अनुरूप हो, शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों के लिए तैयार किए जाए। शैक्षिक साफ़्टवेयर के विकास और मूल्यांकन के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाया जाए।

3. भारतीय भाषाओं में कम कीमत के कंप्यूटर शीघ्र उपलब्ध कराए जाएं।

4. भारतीय भाषाओं में टैक्नालॉजी के विकास की प्रक्रिया में सभी संबंधित संस्थाओं को शामिल किया जाए। 'प्रोग्राम' के विकास को प्राथमिकता दी जाए।

5. ध्वनिपरक आगम उपस्कर, मशीनी अनुवाद, अनुवाद और भा. लिपि पहचान यंत्र का विकास प्राथमिकता के आधार पर किया जाए।

1464 HA/2001—2A

6. कंप्यूटर क्लबों में कंप्यूटर से शिक्षण और कौशल विकास हेतु अभ्यास को प्रोत्साहन दिया जाए। शैक्षिक साफ़्टवेयर में कंप्यूटर को साधन के रूप में प्रयोग किया जाए।

7. कंप्यूटर साधित शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए बी.एड. और एम.एड. जैसे अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में **'कंप्यूटर साधित शिक्षण'** कोर्स को भी शामिल किया जाए। विषय विशेष को ध्यान में रखकर कैसेट, वीडियो और कंप्यूटर टेक्नालॉजी का चयन किया जाए। भारत में **कैल** (CAL) स्वयं अधिगम की अपेक्षा **'कैट'** (CAT) कंप्यूटर साधित शिक्षण अधिक उपयुक्त होगा।

नई भाषा सीखने के लिए 'कंप्यूटर साधित भाषा-शिक्षण' अधिक उपयोगी है। इसके माध्यम से न केवल भाषा सीख सकते हैं वरन् तत्काल सूचनाओं की प्रतिप्राप्ति (फ़ीड बैक) भी होती है। डा. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने इसके लिए पांच आवश्यक तत्व स्वीकार किए हैं :

1. **समृद्ध कंप्यूटर स्मृति कोश (मेमॉरी) :**

अच्छे भाषा पाठ के लिए एक समृद्ध स्मृतिकोश की आवश्यकता होती है। प्रतिप्राप्ति के कई स्तर, त्रुटि विश्लेषण में अच्छे ढंग से समर्थ और व्याकरणिक विवरण के एक अच्छे विधान के साथ बीस वाक्यों वाले अभ्यास के लिए हमें तीस लाख सूचना-अंश (बिट्स आव इनफ़ार्मेशन) चाहिए। ***

2. **गति की तीव्रता :**

कंप्यूटर साधित भाषा पाठ के लिए यह आवश्यक है कि छात्रों से लिए गए प्रत्युत्तर की स्वीकृति, उचित प्रतिप्राप्ति, नए प्रश्नों के चुनाव आदि में कंप्यूटर अधिक क्षण न लगाए।***

3. **कंप्यूटर भाषा की सक्षमता :**

कंप्यूटर भाषा वह भाषा होती है जिसके सहारे प्रोग्रामर मशीन से बात करता है। इस भाषा को इतना सक्षम होना चाहिए कि वह छात्रों के प्रत्युत्तर का भाषिक विश्लेषण कर सके, यथा वह शब्द से उसके उपसर्ग और प्रत्यय निकाल सके, सही शब्द-क्रम की पहचान कर सके, कोशीय त्रुटियों को वर्तनी की अशुद्धियों से अलग कर सके।

4. **सहज कुंजीपटल :**

वैज्ञानिक, सही, प्रभावी व्यवस्था होनी चाहिए और अंकों में 0 से 9 तक की सुविधा। ***

5. **दिग्दर्शक फलक की सुविधा :**

बाह्य उपकरणों की सक्रिय करने को कंप्यूटर में ऐसी क्षमता होनी चाहिए जिससे स्लाइड का चुनाव हो सके, टेपरेकार्डर और वीडियो टेप का संचालन संभव हो सके।

(अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, सन् 2000, पृ. 160)

1464 HA/2001—2B

पाठ सामग्री व्यवस्था में निम्नलिखित की आवश्यकता पड़ती है :

यंत्र सामग्री (हार्डवेयर)

प्रक्रिया सामग्री (साफ़्टवेयर)

पाठ सामग्री (कोर्स वेअर)

क्रमिक संचालन हो सके जिससे उन सभी समादेशों को पूरा करने की क्षमता विकसित हो सके और छात्रों की त्रुटियों का सही विश्लेषण किया जा सके।

राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) के तत्वावधान में पहले ही अनेक प्रकार की यांत्रिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जा चुकी हैं जिनका विवरण ''देवनागरी में यांत्रिक और इलैक्ट्रानिक सुविधाएं'' शीर्षक पुस्तिका में प्रकाशित है। कंप्यूटर तथा भारतीय भाषाओं के संदर्भ में भारतीय लिपियों के लिए **'जिस्ट'** (GIST) का उपयोग अब सर्वविदित है। 'हिंदी-शिक्षण' के लिए जो सामग्री तैयार की गई है उनका विवरण इस प्रकार है :

'लीला-हिंदी-प्रबोध' (सी. डी.)

सी-डेक, पुणे की सहायता से **'लीला-हिंदी-प्रबोध'** तैयार करवाया गया है। **'लीला'** (LILA) वस्तुत: **'लर्न इंडियन लैंग्वेजज थ्रू आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस'** का ही एक्रोनिम है जिसकी सहायता से कर्मचारी और अधिकारी कंप्यूटर की सहायता से प्रबोध स्तर तक की हिंदी सीख सकते हैं। देवनागरी वर्ण की लेखन विधि ग्राफिक्स के रूप में चित्रित होती है और देवनागरी के वर्णों की रचना विधि ट्रेसर (स्ट्रोक-बाई-स्ट्रोक) और उसके उच्चारण के संबंध में आवश्यक जानकारी मिलती है। इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं :

—ध्वनि व उच्चारण की व्यवस्था (शब्दों में वर्णों का मानक उच्चारण सुना जा सकता है।)

—उच्चारण जितनी बार चाहें, सुन सकते हैं। अभ्यास भी कर सकते हैं।

—उच्चारण सुनकर अपनी वाणी रिकॉर्ड भी करवाई जा सकती है और तुलना भी कर सकते हैं (AAC)

—ऑन लाइन कोश (Dictionary) की व्यवस्था भी है।

—दृश्य साधन (फिल्म) क्लिपिंग के रूप में उपलब्ध है।

—शब्दों के ग्राफिक्स/चित्र भी उपलब्ध हैं।

—स्वयं अधिगम की पद्धति।

—मूल्यांकन की व्यवस्था भी है जिससे उसकी संप्राप्ति का विवरण प्राप्त हो जाता है।

इसी पद्धति पर '**लीला-हिंदी प्रवीण**' भी तैयार कर लिया गया है और '**लीला-हिंदी प्राज्ञ**' निर्माणाधीन है। यह पद्धति अब सुचारू रूप से काम करती है और डॉस के साथ '**विंडोज**' पर उपलब्ध है।

इससे पूर्व भी सी. डेक, पुणे के प्रयास से 'लीप ऑफिस' शब्द संसाधक तैयार किया गया था जिसके द्वारा कार्यालय में समुचित रीति से कार्य किया जा सकता है।

'**लीप आफिस**' हिंदी ही नहीं, वरन् भारतीय भाषाओं के लिए तैयार किया गया **शब्द संसाधक** (वर्ड प्रोसेसर) है। इससे प्रचलित विंडो आधारित अधिकांश एप्लीकेशनों; जैसे- एमएस. आफिस, पेजमेकर, एक्सल-फ़ोकल प्रो आदि में भारतीय भाषाओं में काम किया जा सकता है। इसके माध्यम से आप भारतीय भाषाओं—असमिया, बंगाली, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, हिंदी—में लिख सकते हैं। अंग्रेजी लिपि के समान ही भारतीय भाषाओं की लिपियों में फॉन्ट भी उपलब्ध हैं।

इस पैकेज की प्रमुख विशेषताएं हैं :

—एडिट करने के लिए एक प्रोग्राम।

—पाठ की भारतीय लिपि में परिवर्तित करना और मुद्रित करना।

—राजभाषा शब्दकोश जिससे अंग्रेजी शब्दों और अभिव्यक्तियों का हिंदी, मराठी और गुजराती में अनुवाद किया जा सके।

—आवश्यतानुसार किसी व्यवसाय/कार्यालय से संबंधित शब्दकोश जोड़े जा सकते हैं। आप अपनी आवश्यकतानुसार इसके स्वरूप में परिवर्तन भी कर सकते हैं (कस्टोमाइज़्ड)

—मौजूदा शब्दकोश में अपने शब्दों/वाक्यांशों को जोड़ा जा सकता है।

—भारतीय भाषाओं, विशेषतः हिंदी, मराठी, गुजराती के लिए वर्तनी (स्पेलिंग) की जानकारी भी है।

—सभी भाषाओं के लिए समान कुंजीपटल आउट ले, ध्वन्यात्मक (वर्णक्रमानुसार) कुंजी-पटल भी है जिससे उच्चारणानुसार टाइप किया जा सकता है।

—अंग्रेजी व भारतीय भाषा की लिपि चुनने के लिए टॉगल स्विच (Toggle Switch) भी उपलब्ध है।

कुछ गैर-सरकारी कंपनियां भी इस दिशा में बड़ी तेजी से आगे बढ़ रही हैं जिनमें से कुछ कार्यों का उल्लेख ही यहां किया जा रहा है :

अक्षर :

विंडोज पर **अक्षर कुंजीपटल** पर रेमिंग्टन टाइप हिंदी कुंजीपटल और इलैक्ट्रानिक विभाग के मानक कुंजीपटल (फ़ोनेटिक) के विकल्प को उपलब्ध कराता है। कोई भी व्यक्ति रोमन अक्षरों में भी देवनागरी में हिंदी टाइप कर सकता है।

'अक्षर' शब्दकोश पाठ के अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद कार्य में सहायता करता है। एक सरल कमांड द्वारा अंग्रेजी शब्द के अलग-अलग सभी अर्थ स्क्रीन पर आ जाते हैं। कोई भी अधिकारी/सहायक उनमें से एक अर्थ चुन सकता है और स्वत: पाठ में जुड़ जाता है। इसमें हिंदी के पाठ में शब्दों को ढूंढने और बदलने का कार्य भी कर सकता है। अक्षर के साथ जो सहायक सामग्री- **'दिव्या'** और **'निशा'** उपलब्ध होती है उसकी सहायता से व्यंजन पर दो स्वर चिह्नों के प्रयोग की गलतियां कम हो जाती हैं। इसमें स्पेलिंग्स भी उपलब्ध हैं।

अनुवादक :

सेंटर फ़ार कंप्यूटर एजुकेशन, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली द्वारा **'अनुवादक'** प्रोग्राम तैयार किया गया है। यह प्रोग्राम अंग्रेजी-हिंदी द्विभाषिक अनुवाद के रूप में तैयार किया गया है जिसमें हिंदी भाषा के व्याकरण संबंधी नियम भी हैं। इनकी सहायता से अंग्रेजी के शब्दों/वाक्यांशों का अनुवाद प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों भाषाओं के स्पेलिंग्स भी उपलब्ध हैं।

इनके प्रयोग के लिए बहुत समानांतर कोश भी उपलब्ध हैं। सरकारी पत्राचार में काम आने वाली शब्दावली/अभिव्यक्तियां भी इसमें विद्यमान हैं। और अधिक शब्दों को इसमें सम्मिलित किया जा रहा है।

अनुवाद के पूर्व और बाद की स्थितियों से निपटने के लिए व्याकरण चेकर भी विद्यमान है।

इसके अतिरिक्त मल्टीमीडिया में निम्नलिखित प्रोग्राम उपलब्ध हैं :

आओ हिंदी पढ़ें—भाग 1 (संज्ञा)

आओ हिंदी पढ़ें—भाग 2 (सर्वनाम)

आओ हिंदी पढ़ें—भाग 3 (विशेषण, वचन, वाक्यप्रकरण, शब्द प्रबोध)

हिंदी 'शब्द प्रबोध' द्वारा वह उपसर्ग-प्रत्य अनेक शब्दों के स्थान पर एक शब्द, पर्याय, विलोम, समध्वन्यात्मक शब्द आदि उपलब्ध हैं।

मल्टी मीडिया पर आधारित **'लर्न हिंदी'** द्वारा जैसा कहा जा चुका है कि इसकी सहायता से संधि रूपों को भी सीखा जा सकता है । साथ ही समान उच्चारण वाले भिन्नार्थक शब्दों का ठीक प्रयोग भी सीखा जा सकता है।

सुविंडो-2 : यह विंडो के लिए सोफ़्टवेयर है। यह ऐसा साधन है जिससे प्रयोगकर्त्ता **अनुकूल** (फ्रेंडली) वातावरण में काम कर सकता है अर्थात् इसमें लिप्यंतरण, शब्दों/पदबंधों के शब्दकोश की सुविधाएं हैं, साथ ही वर्तनी जांच भी की जा सकती है। ऐसा माना जाता है कि इसके प्रयोग से परिपत्रों/आदेशों को द्विभाषी रूप में जारी किया जा सकता है। (आर. के. कंप्यूटर, नई दिल्ली-14)।

मैट : 'मैट' एक्रोनिम है-MAT (Machine Aided Translation System)-मशीन साधित अनुवाद प्रणाली। इस साफ़्टवेयर से पिचासी (85%) प्रतिशत पदव्याख्या तथा साठ प्रतिशत सही अनुवाद प्राप्त किया जा सकता है। इसमें नौ हज़ार पांच सौ शब्दों का मूल शब्दकोश भी है। इसमें पाणिनीय पद्धति पर आधारित आधुनिक कृत्रिम बुद्धि भी है। सही-सही **परसर्ग** (Postposition) के चुनने के लिए कारक सिद्धांत भी है। (इलेक्ट्रोनिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट नोएडा)।

गुरु : हिंदी सीखने के लिए सी. डी. रोम '**गुरु**' है। वास्तविक और प्रत्यक्ष जीवन की स्थितियों के माध्यम से इससे सीखने की सुविधा है जिसके लिए सामान्य प्रयोगो में आने वाले दो हज़ार शब्दों के अर्थ, उच्चारण (लिप्यंतरण भी) आदि उपयोगी सामग्री जुटाई गई है। (मैत्रिक सोफ़्टवेयर) **वेबप्राक :** यह ऐसा साधन है जिसकी सहायता से देवनागरी और अन्य भारतीय भाषाओं में कार्य किया जा सकता है। इसमें इंट्रानेट तथा इंटरनेट (Intranet-Internet) से लाभ उठाया जा सकता है। (सोनाटा सोफ़्टवेयर)

राजभाषा-कॉम : इसमें ऐसी व्यवस्था की गई है कि शब्दकोश, ई-मेल, इंटरनेट की सुविधा के अतिरिक्त ऑन लाइन (On line) हिंदी-शिक्षण भी संभव है।

अनेक प्रकार के सोफ़्टवेयर अब उपलब्ध हैं जिनकी विस्तृत सूचना निदेशक (तकनीकी) राजभाषा विभाग, द्वितीय तल, बी विंग लोकनायक भवन, नई दिल्ली-110003 से प्राप्त की जा सकती है।

भारत में तो कंप्यूटर साधित भाषा शिक्षण की व्यवस्था बहुत बाद में प्रारंभ हुई है जबकि विदेशों में, विशेषत: अमेरिका में इसकी रजत जयंती भी मनाई जा चुकी है। सन् 1974 ई. में शेरवुड[1] (Sherwood, Bruce.A.) ने 'ट्यूटर लैंग्वेज' पर लिखा। उसी समय प्लेटो-IV के माध्यम से हिंदी शिक्षण प्रारंभ किया गया।

'प्लेटो-IV' एक प्रकार से स्वचालित शिक्षण संक्रिया है। 'प्लेटो' भी एक्रोनिम है :

PLATO = प्रोग्राम्ड लॉजिक फ़ार ऑटोमेटिड टीचिंग ऑपरेशन

Programmed Logic for Automated Teaching Operation

P L A L O

1. इस संबंध में निम्नलिखित आधार सामग्री का अध्ययन किया जा सकता है :
Sherwood, Bruce A. (1974)—The Tutor Language, Urban a.
Sherwood, Bruce A. & Stifle G. (1975)—Plato-IV.

प्लेटो-IV पर आधारित हिंदी-शिक्षण को प्रारंभ करने का श्रेय डा. तेज के. भाटिया को है जिन्होंने प्रो. ब्रजकाचरू तथा प्रो. यमुना काचरू के निर्देशन में इस पद्धति से हिंदी पढ़ाने का कार्यक्रम तैयार किया और इस दिशा में हुई प्रगति की जानकारी के लिए रिपोर्ट को पढ़ा जा सकता है (A Progress Report on the Computerbased Hindi Teaching Course—1975)। इस पद्धति की यह विशेषता है कि इसमें जहां एक ओर **श्रवण एकक** (आडियो यूनिट) की सुविधा है वहीं दूसरी ओर **शब्द-भंडार** की सुविधा है। आज तो इस दिशा में पर्याप्त प्रगति हो चुकी है। इंटरनेट के माध्यम से इसमें **'हिंदी-शिक्षण'** का कार्य प्रारंभ हो चुका है। आवश्यकता इस बात की है अन्य देशों से अद्यतन सूचनाएं प्राप्त की जाएं।

केन्द्रीय हिंदी संस्थान (आगरा व दिल्ली) :

संस्थान के आगरा व दिल्ली केन्द्रों पर विदेशियों को हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। एक दशक पहले आई. आई. टी. दिल्ली के सहयोग से इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग की वित्तीय सहायता से दिल्ली केंद्र में विस्तृत परियोजना तैयार की गई।

कंप्यूटर साधित हिंदी अर्जन—फाल्ट (Computer Aided Language Teaching) शीर्षक इस परियोजना के अंतर्गत हिंदी शिक्षण के साथ कंप्यूटर कोश की व्यवस्था भी की गई जिसकी सहायता से अन्य भारतीय भाषाओं में अनुदेश पढ़कर हिंदी सीखी जा सकती है। इस परिकल्पित सोफ़्टवेयर का नाम **'गुरु'** रखा गया जिसके अंतर्गत निम्नलिखित शिक्षण बिन्दुओं को समाहित किया गया :

—लिपि

—रूपविज्ञान

—वाक्य विज्ञान

—पाठ

—वार्तालाप

इसमें दो मोड्यूल हैं—शिक्षक मोड्यूल और प्रशिक्षणार्थी मोड्यूल।

'सर्जक' के अंतर्गत शब्दों के अर्थ, शब्द-निर्माण, पर्याय, विपरीतार्थक, सांस्कृतिक टिप्पणी, सहप्रयोग, अंग्रेजी समानांतर रूपों की सूचना भरी जा सकती है। कुछ आधार पाठों का विवरण है:

—परसर्ग परीक्षण

—संज्ञा, क्रिया, संख्यावाचक विशेषण, सर्वनाम

—आधारभूत वाक्य, वाक्य रूपांतरण, अन्विति।

—शब्द क्रम।

—संज्ञा पदबंध व क्रियापदबंध।

'टिक' यह भारतीय सांस्कृतिक संकल्पनाओं को सीखने का स्वमूल्यांकन एवं परीक्षण का पैकेज है। संस्थान के दिल्ली केंद्र की पू. प्रभारी डा. शारदा भसीन द्वारा **''कंप्यूटर संसाधित भाषा शिक्षण एवं सर्जनात्मक लेखन''** पर आदर्श आलेख तैयार किया गया।

संस्थान के मुख्यालय आगरा में इस कार्य के लिए पृथक तकनीकी कक्ष स्थापित किया गया है, जिसमें कई परियोजनाओं पर कार्य किया जा रहा है। डा. वशिनी शर्मा व डा. ठाकुरदास सक्रिय रूप से इस कक्ष से जुड़े हुए हैं।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में ही 'विदेशों में हिंदी प्रचार योजना' तथा 'सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजना' के अंतर्गत चुने हुए छात्रों को हिंदी शिक्षण प्रदान किया जाता है। अद्यतन स्थिति की जानकारी भी मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा को है।

परिशिष्ट :

हिंदी-शिक्षण से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री जो रिकॉर्ड, कैसेट, सी.डी. पर उपलब्ध है उनका विवरण इस प्रकार है :

1. **स्वयं हिंदी सीखें**—डा. वी. रा. जगन्नाथन, जनेपा, नई दिल्ली-1

(Learn Hindi Yourself) सन् 1991

भाग-1—लिपि और उच्चारण (पांच इकाई)

भाग-2—पाठ और मौखिक अभ्यास (पांच इकाई)

पृ. सं. 56 + 552 = 608, सी-90 के चार कैसेट

2.	An Advanced Hindi Magazine Reader	—डा. अवधेश के. मिश्र आभास प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1994.
3.	बोलचाल की हिंदी (Spoken Hindi)	,, —वही— 1994 ई.
4.	Hindi Workbook (Classified)	,, —वही— 1994 ई.
5.	हिंदी लिंग्वा रिकार्ड	केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली-110066

(अंग्रेजी, तमिल, मलयालम, माध्यम से)

'कैसेट' भी अब अंग्रेजी, तमिल, मलयालम, बंगला, उड़िया, असमिया, तेलुगु, कन्नड़, कोंकणी माध्यम में उपलब्ध हैं।

6. सात वीडियो कैसेट भी निदेशालय में उपलब्ध हैं। कुछ निर्माणाधीन हैं।

सी.डी. रोम में उपलब्ध :

1. आओ हिंदी सीखें भाग 1, 2 व 3 (Learn Hindi)	सेंटर फ़ार कंप्यूटर एजुकेशन नई दिल्ली-110019
2. गुरू	मैत्रिक साफ़्टवेयर, नई दिल्ली-110048
3. **'लीला'** हिंदी प्रबोध	राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) लोकनायक भवन, नई दिल्ली सी डेक, पुणे, सन् 2001
4. **'लीला'** हिंदी प्रवीण	—वही— सन् 2001

विश्व में हिंदी की ओर बढ़ती हुई रुचि को देखकर अब **इंटरनेट** के माध्यम से प्रोग्राम बनाने में अनेक विश्वप्रसिद्ध कंपनियां सक्रिय हो उठी हैं।

नंदन, भारती नगर, मैरिस रोड, अलीगढ़—202001

जापान की प्रौद्योगिक संस्कृति

—डॉ० ओम विकास

संधि—पूर्व और पश्चिम

प्रात: के 6.00 बजे टोक्यो से प्रो. हिराता का फोन आया; ओहायो गोजाइमसु। नमस्कार। वहां 9.30 बजे प्रात: का समय था। वहां प्रात: 6 बजे पार्क में रेडियो प्रसारण के अनुसार सामूहिक व्यायाम करते हैं। प्रो. हिराता युवा मित्र बन गए थे जब लेखक जापान में 1992-95 के बीच सपरिवार रहा। भारतीय दूतावास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का कॉन्सलर था। कई फैक्टरी और शोध संस्थान भी देखे। MITI (मिनिस्ट्री ऑफ इंडस्ट्रियल ट्रेड एंड इंडस्ट्रीज), JSPS (जापान सोसायटी फॉर प्रमोशन ऑफ साइंस) आदि के अधिकारियों से भी मिला। सब कुछ जापानी भाषा में उपलब्ध था, ओपन सीक्रेट। जापान के बारे में पुरानी बातें गलत लग रही थीं—जापानी चीजें कम टिकाऊ; जापानी लोग कम कद के; जापानी घर लकड़ी के, बहुमंजिली इमारतें नहीं। उच्च गुणवत्ता के कारण "मेड इन जापान" की प्रतिष्ठा है। प्रोटीन-प्रचुर भोजन लेने से जापानी लोग सामान्य कद के और छह फुटे दिखते हैं। भूकंप आते थे सो लकड़ी के मकान बनाते थे; भूकंप अब भी आते हैं लेकिन भूकंपरोधी टैक्नोलॉजी से 40-50 मंजिल की इमारतें सामान्य हैं। बिना घट-बढ़ के निश्चित वोल्टेज (110 वोल्ट) की बिजली अबाध उपलब्ध है, कभी गुल नहीं होती। सब-वे ट्रेन यातायात सुगम है; डिब्बे साफ सुथरे, सर्वथा सुरक्षित हैं। टिकिटिंग व गेट-बंद स्वचालित हैं। यातायात के लिए सड़कों के नीचे सब-वे ट्रेन का जाल है। ऊपर बस और कारें, और नीचे सब-वे ट्रेन। अधिकांश लोग सब-वे ट्रेन से चलते हैं। स्टेशन या ट्रेन में खोई हुई चीज मिलने की बहुत संभावना है। सड़क पर भी टॉफी का रैपर, अन्य कागज या मूंगफली के छिलके कोई गिराता नहीं। सिंगापुर की भांति फाइन या दंड से ऐसा नहीं, प्रत्युत सामाजिक जागृति और संकल्प का परिणाम है।

पूर्व और पश्चिम का संधि देश जापान है। सुदूर पूर्व के इसी देश पर सूर्य की पहली किरण पड़ती है। इसलिए, इसे कंट्री ऑफ द राइजिंग सन भी कहते हैं। जापान की आबादी 12.6 करोड़ है। छोटा देश है, लेकिन विशिष्टताओं से सम्पन्न रहा। प्राच्य संस्कृति की धरोहर को संजोए वर्तमान में प्रासंगिकता बनाए रखी। अन्य संस्कृतियों को आत्मसात किया; अपनी, अस्मिता को भी अक्षुण्ण रखा। सौंदर्य के प्रति संवेदनशील रहा। पाषाण व धातु से बनी वस्तुएं, आयुध और समाज की उत्तरोत्तर व्यवस्थाएं जापानी सभ्यता के विकासक्रम के प्रतीक बने। विविध प्रकार की प्रौद्योगिकी अर्थात् टैक्नोलॉजी के विकास में जन सामान्य का योगदान रहा। संस्कृति और प्रौद्योगिकी के विकास में "आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वत:" की नीति को अपनाया। राष्ट्रध्वज में सूर्य को रखा। इसे हि नो मारु कहते हैं (हि = सूर्य, नो = का, मारु = वृत्त/डिस्क)।

जापानी बौद्ध हैं, शिन्तो का भी सम्मान है। क्रिश्चियन उत्सव और रीति रिवाजों को भी औद्योगिकीकरण की होड़ में अपनाया। परंपरागत सोच से अभिभूत व्यवहार भी देखने को मिलता है। वर्गाकार रेशमी कपड़े में पुस्तकें बांधकर ले जाते भी दिखेंगे। महिलाएं किमोनो पहने प्राय: दिखेंगी। जापानी भाषा के अखबार और पुस्तकें पढ़ने का शौक है। मंहगा क्यों न हो, जापानी राइस (चावल) पसंद है। नमस्कार झुक कर करते हैं; विनम्र दिखते हैं। कार्य-सौष्ठव पर बल देते हैं। बागवानी, पुष्प सज्जा, चाय-पान, बातचीत करना आदि साधारण-से-साधारण कौशल को सरल कार्य पदों में विभाजित कर प्रशिक्षण पर बल देते हैं। ऐसे सोच, अभ्यास और सामूहिक प्रयास से नई चीज बनाते हैं, उसका बाजार बढ़ाते हैं और लाभ कमाते हैं। यह प्रौद्योगिक संस्कृति जापान की विशिष्टता है।

संक्रमण—प्रकृति और जीवन

6वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म कोरिया से जापान पहुंचा। इससे पहले जापान में प्रकृति की उपासना होती थी। इसे शिन् तो (शिन् = दिव्य; तो = मार्ग) धर्म के नाम से जाना जाता है। बौद्ध धर्म भारत से कोरिया और चीन में फैला। प्रारम्भ में बौद्ध धर्म ने राजनीति को भी प्रभावित किया। वास्तु शिल्प पर कोरिया का प्रभाव रहा। कई संस्कृतियों का संगम हुआ। वास्तुशिल्प और पेंटिंग में नवीनता रही। विदेशी संस्कृतियों ने मूल जापानी जीवन पद्धति को नहीं बदला। इनके सह-अस्तित्व को बल मिलता गया।

794 से 1185 तक जापान की राजधानी क्योतो में थी। इस दौरान संस्कृतियों को आत्मसात किया गया; चीनी संस्कृति का जापानीकरण हुआ। धर्म गुरुओं की पहुंच सत्ता तक थी। इसी काल में काना लिपि का विकास हुआ। भारत के भगवान बुद्ध को अमिदा न्योराई (अमिताभ), याकुशी न्योराई (भैषज्य गुरू), गाक्को बोसात्सु (चंद्रप्रभा), दाईबुत्सु-यो (महा बुद्ध) आदि विविध रूपों में चित्रित और शिल्पित किया गया।

1185 में फौजी शासन का प्रभाव हुआ, राजधानी क्योतो से हटकर नामाकुरा चली गई। चीन और जापान के राजनैतिक संबंध नहीं थे, फिर भी व्यापार और संस्कृति का आदान-प्रदान होता रहा। चाय का प्रचलन हुआ। कुछ जापानी साधकों ने चीन जाकर ज़ेन बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। प्रारम्भ में बौद्ध धर्म सह-अस्तित्व के साथ मध्य मार्ग के रूप में फैला। ज़ेन शाखा ने आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए "ध्यान" पर बल दिया। ज़ेन जापान की प्रकृति—प्रेम की पुरातन परंपरा के अनुरूप सिद्ध हुआ। बौद्ध संतों ने बागवानी को नए रूप दिए, प्रकृति की अनंतता को प्रतीक रूप में अल्प में समाहित किया। अनंत से सूक्ष्म की ओर निरंतर सोच . . .।

1467 में गृह युद्ध के बीच छोटे-छोटे सामंती राज (दाम्यो) बने। 1573 में ओदा नोबुनागा ने एकीकरण की प्रक्रिया शुरू की। तोयोतोमी और तोकुगावा ने इसे राजनैतिक स्थिरता दी; औद्योगिक एवं आर्थिक विकास तेजी से हुआ। साहित्य, कला, नो थिएटर, नृत्य नाटक काबुकि, केली ग्राफी (सुष्ठु लेखन), सुमुए चित्रांकन कला, टी-सेरीमनी समाज और सत्ता में प्रतिष्ठित

हुई। उकियो-ए शैली की पेंटिंग सामान्य लोगों में लोकप्रिय हुई। तोकुगावा ने एदो (आजकल तोक्यो) को राजधानी बनाया। तोकुगावा काल में चीन से व्यापारिक संबंध रहे; विदेशों से राजनयिक सम्पर्क नहीं बढ़ाए गए। इसलिए, पश्चिमी देशों की प्रौद्यागिकी नहीं पहुंच सकी। (एदो काल : 1600 - 1868)।

संस्कृति समेकन—जीवन और अर्थ

1853 में कोमोडोर पैरी ने यूरोप और अमेरिका की सैन्य शक्ति पहचानने के लिए जापान को मजबूर किया। पश्चिम की संस्कृति के लिए जापान के द्वारा खुल गए। आर्थिक विकास तेजी से हुआ। जनतांत्रिक आधुनिकीकरण की सीमाएं रहीं, सो होड़ में जापान सैन्य शक्ति बना, जिसकी परिणती पड़ोसी देशों से भीषण युद्ध के रूप में हुई। 1868 में तोकुगावा शोगुनत के पतन के बाद मेइजी साम्राज्य का अभ्युदय हुआ। प्रतीक श्रेष्ठ सम्राट के अधीन विदेश—विरोध की प्रतिक्रिया के रूप में नई सरकार का गठन हुआ। मेइजी काल में पश्चिम देशों से सम्पर्क बढ़ा, टैक्नोलॉजी मिली; औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। (अधुनापूर्व आर्थिक विकास काल : 1868-1945)।

टैक्नोलॉजी का आयात ही पर्याप्त नहीं था; इसे अपनाने और आत्मसात करने के लिए सामाजिक चेतना आवश्यक थी। मेइजी सरकार ने सामाजिक विषमताओं को दूर कर नई व्यवस्था दी। 1871 में प्रांतों का गठन किया। अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा सुनिश्चित की। "पढ़ने, लिखने और प्रारंभिक गणनाएं करने के कौशल" पर आधारित प्राइमरी शिक्षा पर बल दिया गया जिससे आधुनिक समाज के निर्माण में आसानी हो। उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए पश्चिम के विशेषज्ञों को बुलाया गया। प्रशिक्षण के लिए जापान से भी अध्यापकों और शोधकर्ताओं को पश्चिमी देशों में भेजा गया। पूर्व-पश्चिम का बौद्धिक एवं उच्च तकनीकी समागम थोड़े से संभ्रांत लोगों तक ही सीमित रहकर क्षणिक और अल्प प्रभावी बनकर न रह जाए, इसलिए, प्रचुर मात्रा में अनुवाद के सहारे पश्चिम देशों के ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी और संस्कृति को जन सामान्य तक सुलभ कराने की भी व्यवस्था की गई। इस काल को पश्चिमी संस्कृति का प्रवेश काल कहना अतिशयोक्ति न होगा। सांस्कृतिक प्रतिक्रियावाद भी पनपा। परंपरागत वाका और हाइकू काव्य, जापानी पेंटिंग, नाट्य एवं संगीत विधाएं भी प्रभावित हुईं। नई पुरानी संस्कृतियों का सुंदर संगम हुआ। अभिनव समाहृत सृजन विधाएं प्रचलन में आई। "कला" समृद्ध हुई और परिपक्व होती गई।

द्वितीय विश्व युद्ध में 119 शहरों पर हुई बमबारी में 22 लाख घर नष्ट हो गए; 90 लाख लोग बेघर हो गए। माइनिंग और मेन्यूफेक्चरिंग का उत्पादन 6.6 प्रतिशत रह गया; शिपिंग व्यापार 24%; कपड़े का उत्पादन 33% रह गया। युद्ध की विभीषिका से उभरने और आर्थिक विकास तेजी से करने की सामर्थ्य जर्मनी और जापान में उल्लेखनीय है। तकनीकी नवाचार, गुणवत्ता के प्रति सचेष्टता और गौरवमय अतीत से जुड़े रहना इन देशों की विशेषता रही है। 1973 में अरब देशों

ने तेल के ऊंचे दाम करके विश्व में तेल संकट पैदा कर दिया। कई उन्नत देशों ने तेल के आयात में कमी की। लेकिन जापान ने तकनीकी नवाचार (टेक्नोलॉजीकल इन्नोवेशन) से तेल संकट को हल किया। अमेरिका और यूरोप के देशों में मंदी की दौर था। डगमगाती अर्थव्यवस्था से उभरने के लिए विश्व जापान और तत्कालीन पश्चिम जर्मनी की ओर अभिमुख हुआ। 1965 से लगातार बढ़ते आर्थिक विकास का मूल कारण प्रौद्योगिकी नवाचार रहा; विकास का 1/3 भाग टैक्नोलॉजी के कारण था। अमीर गरीब के बीच प्रतिव्यक्ति आय में अंतर बहुत कम रहा। 1960 और 1970 के दशकों में औद्योगिक प्रदूषण रोक और ऊर्जा संरक्षण के लिए उपयुक्त टैक्नोलॉजी विकसित की। 1979 में दूसरा तेल-संकट आया। लेकिन जापान में आर्थिक प्रगति हुई। इसमें टैक्नोलॉजी और प्रबंधन-कौशल दोनों ही प्रमुख हैं; ये समाज-विषयक हैं; विज्ञान की भांति सार्वभौमिक नहीं हैं। जापान में प्राकृतिक संसाधन बहुत कम हैं। 95% ऊर्जा की आपूर्ति आयातित तेल से होती है। मैन्यूफैक्चरिंग और माइनिंग उद्योग के लिए कच्चा माल 90% आयात किया जाता है; और खाद्य सामग्री 60%।

उद्योग पुनरोत्थान योजना के अन्तर्गत प्राथमिकता उत्पादन नीति अपनाई गई। 1945-1950 में केमिकल फर्टीलाइजर का उत्पादन बढ़ाकर चावल उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल की। 1950 में कोल-माइनिंग के लिए जर्मन टैक्नोलॉजी काप्पे विधि का आयात किया, इसे आत्मसात किया, सुधार करके कोयले का खनन बढ़ाया। 1970 के दशक में अन्य देशों से स्टील टैक्नोलॉजी की जानकारी एकत्र करके जापान ने सकेंमित टैक्नोलॉजी का विकास कर स्टील उत्पादन में घरेलू आवश्यकता से अधिक बढ़ोत्तरी की। भूमि सुधार के अंतर्गत एक हेक्टेयर की सीमा निश्चित करके किसानों को भूमि बांट दी गई। घरेलू बाजार बढ़ाने में इसकी प्रमुख भूमिका रही।

प्रौद्योगिक नवाचार — अर्थ और शक्ति

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान झुलस गया। राजनीतिक पराजय, सामाजिक ग्लानि और परमाणु विस्फोट के परवर्ती प्रभावों से त्रस्त जापान ने आर्थिक विकास पर बल दिया। अमेरिका को देश की सैन्य सुरक्षा के लिए धन देना पड़ा। अमेरिका शिक्षा, संस्कृति और अर्थव्यवस्था से प्रभावित हुआ। जापान का अतीत गौरवमय था, सो शिक्षा जापानी भाषा में और सम्पूर्ण साक्षरता पर बल दिया गया। तकनीकी ज्ञान में समान स्तर लाने के लिए तुरंत अनुवाद का सहारा लिया। इंटरफेस भाषा शैली का प्रचलन हुआ। अंगेजी के बहु प्रचलित वस्तुपरक शब्द अपनाए; उन्हें काताकाना में लिखा; संक्षेपाक्षरों को रोमन में लिखा। संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति हीरागाना (जापानी लिपि) और कांजी (चीनी चित्र लिपि) में की। ज्ञान और तकनीकी कौशल "अर्थ" अर्थात् सम्पदा और व्यापार का आधार बना। प्रतिद्वंदिता के लिए समय और गुणवत्ता महत्वपूर्ण बने।

विकसित और विकासशील देशों में अन्तर बीसवीं शताब्दी में कार्मिक-उत्पादकता पर आधारित है। फ्रेडरिक टेलर (1856-1915) के अध्ययन और विश्लेषण के अनुसार बीसवीं

शताब्दी में विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग) के क्षेत्र में श्रमिक-उत्पादकता लगभग 3.5 प्रतिशत वार्षिक की दर से 50 गुनी हो गई। इससे आर्थिक और सामाजिक लाभ मिले। जिस देश में श्रमिक उत्पादकता में अपेक्षित वृद्धि न हो सकी, उनकी अर्थव्यवस्था पिछड़ गई। टेलर ने कौशल को वैयक्तिक विशिष्टता नहीं माना। "कौशल" सरल कार्य-पदों का क्रमबद्ध संकलन मात्र है। कार्य को सरल कार्य पदों में क्रमबार व्यवस्थित करके बार-बार करने की जानकारी उत्पादकता में वृद्धिकारक है। TQM (टोटल क्वालिटी मेनेजमेंट अर्थात् सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन) के जनक W.E. डेमिंग (1900-1993) ने टेलर के सरल कार्यपद सिद्धांत को आधार बनाया। यह जापानी सोच के अनुकूल था। जापान में "क्वालिटी-सर्किल" प्रचलन में आए। इनमें नवीन टैक्नोलॉजी को आत्मसात करके गुणवत्ता बढ़ाने पर प्रशिक्षण दिया गया। सामान्य श्रमिक और कार्मिक टैक्नोलॉजी को अपनाकर उसे और अधिक सुधारने के लिए सुझाव देने लगे। ऐसे छोटे-छोटे सुझावों को फैक्टरी में पुरस्कृत किया जाने लगा। फैक्टरी में ऐसा आचरण परंपरा का अंग बना। इकेबाना अर्थात् पुष्प-सज्जा और टी-सेरेमनी अर्थात् चाय-उत्सव नियमबद्ध और प्रशिक्षण-सिद्ध बनाए। ऐसी सामाजिक और व्यावाहारिक आचरण-गत परंपराओं को औद्योगिक संस्कृति (टैक्नोलॉजी कल्चर) कह सकते हैं। यह जापान के आध्यात्मिक और भौतिक वैशिष्ट्य का द्योतक है।

संकल्प, श्रम और सुयोजन से जापान अर्थशक्ति के रूप में उभरा है। प्रतिव्यक्ति GNP में सर्वोपरि है। अधुनातम सूचना टैक्नोलॉजी के सूचकांक भी अमेरिका के बाद जापान को दूसरे स्थान पर रख सकते हैं। फिर भी, जापान के सामाजिक और आर्थिक विकास की अपनी विशिष्टता है। आधुनिकता के दबाव में भी जापानी भाषा को अपनाए रखा; अंग्रेजी को संदर्भ और इंटरफेस भाषा के रूप में आवश्यकता के अनुसार अपनाया। शिन्तो और बौद्ध धर्मों के सह-अस्तित्व को बनाए रखा। कहा जाता है कि जापानी का जन्म शिन्तो, विवाह क्रिश्चियन और मृत्यु संस्कार बौद्ध रीति-रिवाज से होते हैं। आत्म गौरव पर बल दिया। परंपरागत दुरूह अनुशासन में लीक से हटकर विज्ञान-शोध तो कम रहा; लेकिन अर्थोन्मुखी टैक्नोलॉजी का विकास और परिष्कार तेजी से हुआ। जापान का "व्यवहार" पश्चिमी बना लेकिन "सोच" एशियाई रही।

जापान के लोगों में प्रौद्योगिकी संस्कृति के लक्षण हैं—प्रौद्योगिकी नवाचार और काम का नशा। जापानी वर्क-एल्कोहलिक हैं। छोटे घरों में रहने के आदी हैं। फैक्टरी के कर्मचारी हड़ताल भी करेंगे तो अधिक काम करके। काम न करना राष्ट्रीय हानि मानते हैं। कार्मिक अपने घर के लिए फैक्टरी के फोन का इस्तेमाल नहीं करते। ईमानदारी है।

मेइजी काल (1868) के बाद 60 वर्षों में टैक्नोलॉजी ट्रांसफर, अपनाने, सुधारने की प्रक्रिया सामाजिक विवशता थी। इस दौरान निजी क्षेत्र में **टैक्नोलॉजी-नेटवर्क** भी बना। विश्व युद्ध की विभीषिका के बाद विदेशों से टैक्नोलॉजी ट्रांसफर आर्थिक विवशता थी। राष्ट्रीय स्तर पर सरकार ने टैक्नोलॉजी-विकास और बाजार बढ़ाने की योजना बनाई; सरकार और निजी क्षेत्र के उद्योगों ने मिलकर काम किया। विश्व स्तरीय टैक्नोलॉजी स्पर्धा को बढ़ाया। बड़े उद्योगों के साथ

छोटे-छोटे उद्योगों को जोड़ा। कार उद्योग का उदाहरण लें। एक कार-विनिर्माण कंपनी से 200-300 मेटेरियल निर्माता जुड़े, प्राइमरी पार्ट असेम्बली के लिए 50-100 लघु-मझोले उद्योग जुड़े; प्रेस वर्क, स्क्रू, कटिंग, प्लेटिंग, कास्टिंग, स्पेशल पार्ट आदि सेकेंडरी पार्ट प्रोसेसिंग के लिए 2,000-3,000 लघु उद्योग जुड़े। टर्शरी और अन्य पार्ट बनाने के लिए 7,000-10,000 लघु/कुटीर उद्योग जुड़े।

ज्यों-ज्यों विदेशी पूंजी और टैक्नोलॉजी बढ़ती गई, टैक्नोलॉजी ट्रांसफर को प्राथमिकता दी जाने लगी। 1950-दशक में टैक्नोलॉजी ट्रांसफ़र का उद्देश्य उत्पादन पुनरोत्थान था; स्टील, शिप बिल्डिंग, केमीकल फर्टीलाइजर, टेक्सटाइल उद्योगों को बढ़ाया गया। 1960-दशक में विश्वस्तरीय प्रतिद्वंदिता थी, विदेशी मशीनरी के आयात को कम करना था। ऑटोमोबाइल्स, इलेक्ट्रिक उपकरण, पेट्रोकेमीकल्स उद्योगों को बढ़ाया गया। 1970 के दशक में कुछ विशिष्ट टैक्नोलॉजी में अग्रणी बन जाने पर बल दिया गया। इलैक्ट्रॉनिक्स, परमाणु ऊर्जा, हाई-पोलीमर केमीकल्स उद्योग में कई नए उत्पाद लाकर अग्रणी स्थान बनाया।

1966 में जापान में ICs (इंटीग्रेटेड सर्किट) का उत्पादन प्रारंभ हुआ। 1971 में LSI (लार्ज स्केल इंटीग्रेशन) के विकास से अमेरिकी निर्माता आगे बढ़े। जापानी निर्माताओं ने इसका घनत्व 10 गुना करके अपने बाजार को बढ़ाया। इस प्रकार के प्रौद्योगिकी नवाचार की प्रतिद्वंदिता अमेरिका और जापान के बीच आज भी चल रही है। औद्योगिक उत्पाद 1950 व 1960 के दशकों में "विशाल, लम्बे, भारी और मोटे" हुआ करते थे, लेकिन 1970 व 1980 के दशकों के उत्पाद "छोटे आकार के, हलके और पतले" बनने लगे। 1980 के दशक में "बुद्धिपरक (इंटेलिजेंट) और नेटवर्क से जुड़ सकने वाले" उत्पाद बनने लगे। आधुनिक मशीनें मरम्मत मुक्त बनने लगी हैं। उद्योग पूंजी-परक स्वचालित होने लगे। श्रमिकों या कार्मिकों की संख्या बहुत तेजी से घटी। औद्योगिक विकास उत्पाद-परक था। इससे कम कीमत पर बेहतर उत्पाद लाने की विश्व स्तर पर होड़ लगी। विकासशील देशों को लाभ मिला। 1970-दशक में इलैक्ट्रानिक्स का विकास, 1980-दशक में रोबोट और स्वचालित मशीनों का विकास तेजी से हुआ। नई प्रौद्योगिकी जन सामान्य ने स्वीकारी, व्यावहार में लाकर कम कीमत पर अधिक उत्पादन किया। छोटे-मझोले उद्योगों में रोबोट का विश्व में सर्वाधिक प्रयोग और अधुनातम सूचना क्रांति के दौर में मशीनी अनुवाद सॉफ्टवेयर का सर्वाधिक प्रयोग जापान की प्रौद्योगिक संस्कृति का परिचायक है। निर्यात-उन्मुख औद्योगिक विकास में जापान के लोगों ने नए उद्योग कौशल हासिल किए, और बढ़ते बाजार को आगे बढ़ाया। अर्थशक्ति बनने की यात्रा के दौरान जापान ने औद्योगिक विकास अपने ढंग से किया; कार्मिकों की भागीदारी सुनिश्चित की, परियोजना के सर्वपक्षीय विस्तृत विवरण जापानी भाषा में ही तैयार किए। उत्तरोत्तर मानव-कौशल बढ़ाने के लिए ट्रेनिंग, क्वालिटी सर्किल, काइजेन (बेहतर बनाने), एक-राय-नीति उभारने पर बल दिया। "स्वचालन बढ़ाओ, नए उत्पाद बनाओ, बाजार बढ़ाओ, नए कौशल सीखो" की नीति अपनाई।

विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग) क्षेत्र में रोजगार घटा; शोध एवं विकास और विपणन के क्षेत्र में रोजगार बढ़ने लगा।

1990 के दशक तक औद्योगिक विकास वैविध्यपूर्ण रहा—नव नवीन प्रौद्योगिकी और नए-नए उत्पाद। 2000 के दशक में प्रौद्योगिकी-समाहरण (Convergence of Technologies) का दौर शुरु हो गया है। सूचना क्रांति का दौर है। ज्ञान पोषित समाज (knowledge based society) का आविर्भाव हो रहा है। ज्ञानकर्मी के कौशल और व्यवहार की अपेक्षएं भी भिन्न हैं। अब तक मशीनों की क्षमता बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया जाता रहा है, लेकिन अब कार्य-विधि के पूर्व नियमन और मशीनीकरण की अपेक्षा कार्यकर्त्ता को स्वायत्तता और उसके योगदान में नवीनता पर बल दिया जाएगा। ज्ञान-कर्मी की उत्पादकता बढ़ाने के संदर्भ में पीटर-ड्रकर (1909 -) के अनुसार ज्ञान-कर्मी में अपने कर्त्तव्य और दायित्व का ज्ञान हो; कार्य-निष्पादन में सतत् नवीनता हो, नवाचार हो; सीखना और सिखाना कार्य का अभिन्न अंग हो; उत्पादकता की माप कार्य के परिमाण (क्वांटिटी) से नहीं अपितु गुणवत्ता (क्वालिटी) से हो। ज्ञानकर्मी को स्वायत्तता दी जाए, उसे परिव्यय (कॉस्ट) के रूप में नहीं, अपितु परिसम्पति (असेट) के रूप में देखा जाए।

जापान के औद्योगिक विकास के सोपानों में कटु अनुभव भी हैं। औद्योगिक प्रदूषण बढ़ा। पैट्रोकेमीकल कारखानों से गैसें, शिन्कानसेन (महाद्रुत) ट्रेन से कंपन और शोर से वायु प्रदूषण फैला। फर्टीलाइजर प्लांट से हैवी-मैटल (गुरु धातु) कचरे को मछलियों ने खाया, इन मछलियों को खाने से भयंकर "मिनामाता" रोग फैला, कई लोग मरे, पीढ़ी दर पीढ़ी पंगु बने, रोग ग्रस्त रहे। श्रमिकों की मांग घटने से गांव उजड़े। मुरा-त्सुबुरे (ग्राम-विघटन) और मशीनीकरण-प्रसार समकालिक हुए। मशीनीकरण से कृषि, उद्योग, व्यापार लाभान्वित हुए। आर्थिक विकास हुआ। प्रौद्योगिकी विकास की परियोजनाएं अमेरिका और यूरोप के सापेक्ष में तैयार की गईं।

कश्चित् नहि मोत्ताइनाइ - अध्यात्म और व्यवहार

सोनी कम्पनी के संस्थापक आकिओ मोरिता के अनुसार "कश्चित् नहि मोत्ताइनाइ" विचार जापानी लोग और जापानी उद्योग की विशिष्टता का परिचायक है। इसका आध्यात्मिक भाव है कि विश्व में सब कुछ सृष्टा की देन है, हम इसके लिए आभारी हों और कोई भी वस्तु अनुपयोगी नहीं है। अपव्यय न करें। (मोत्ताइनाइ = अनुपयोगी) जापानी संस्कृति में यह भाव भरा हुआ है, पानी या पेपर भी बरबाद न करें। हर प्रकार के संसाधनों की कमी से जूझते हुए जापानियों को हर चीज का महत्व समझ में आता है।

कोबे स्टील के आमागासी मिल पर उद्‌बोधन लिखा है "मुरी, मृदा और मुरा से बचो"। (मुरी = क्षमता से अधिक काम करना; मुदा = अपव्यय करना; मुरा = अनियमित और असंगत होना)। इस संदेश में विवेक, सुरक्षा, मितव्ययता, सक्षमता, गुणवत्ता नियंत्र पर बल दिया गया है। इसे प्रौद्योगिकी प्रबंधन का SERQ सिद्धांत कहते हैं : Safety, economy, rationality, quality । टोयटा की कानबान पद्धति "ठीक समय पर" (Just-in-time) वितरण प्रणाली से अनावश्यक स्टॉक से बचते हैं; उत्पादन लागत में भी बहुत कमी होती है।

जापान ने पश्चिमी टैक्नोलॉजी के आयात के समय परंपरागत उद्योगों को उजाड़ा नहीं। उनके बीच संबंध बनाए जिससे परंपरागत प्रौद्योगिकी आधुनिकतम बन सके। संभाव्य प्रौद्योगिकी और प्रबंधन क्षमता का अनूठा समन्वय किया। विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात के साथ जापान ने शोध एवं विकास का स्तर भी ऊंचा रखा जिससे टैक्नोलॉजी को स्थानीय कच्चे माल और पर्यावरण के अनुकूल परिष्कृत किया जा सके। टैक्नोलॉजी ट्रांसफर के पहले विस्तृत लागत-लाभ समीक्षा करते हैं। अन्यथा टैक्नोलॉजी का आयात लाभकारी नहीं होता। जितना छोटा उद्योग, उतनी अधिक अपेक्षा होती है कि प्रबंधक को टैक्नोलॉजी की जानकारी हो। अमेरिका में प्रबंधन योजना अल्पकालिक होती हैं, लेकिन जापान में प्रबंधन योजना दीर्घकालिक बनाते हैं। जापानी प्रबंधन में आजीवन रोज़गार है; अधिकार और दायित्व अस्पष्ट से रहते हैं, सामूहिक सहयोग पर बल है। विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग) में टैक्नोलॉजी के साथ-साथ प्रबंधन-गुणवत्ता भी बहुत महत्वपूर्ण है।

प्रायः यह शिकायत की जाती है कि जापान ने मशीन तो बेची लेकिन टैक्नोलॉजी ट्रांसफर नहीं की। जापानी दलील देते हैं कि जब टैक्नोलॉजी ट्रांसफर की जाती है, तब उस टैक्नोलॉजी की संस्कृति ट्रांसफर नहीं हो पाती। जापानी इंजीनियर की विशेषता है कि वह किसी एक डिजाइन या प्रचालन तक ही सीमित नहीं रहता है। उसे इंजीनियरिंग की विस्तृत जानकारी रहती है; विशेषज्ञता क्षेत्र से परे भी ज़ानकारी रखता है। प्रौद्योगिकी समेकन में यह कौशल बहुत काम आता है।

शनैः शनैः सार में

विज्ञान (Science) सार्वभौमिक है। प्रौद्योगिकी (Technology) प्रायोगिक ज्ञान और कौशल का समन्वित रूप है जिसका प्रयोग, उत्पादन, वितरण, सूचना सेवाओं आदि में किया जाता है। प्रौद्योगिकी देशज है; स्थानिक है; सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्षों से प्रभावित होती है। देश और काल के अनुकूलन के बाद ही प्रौद्योगिकी में परिपक्वता आती है; स्थायित्व आता है और तब जन सामान्य में इसका प्रसार होता है। प्रत्येक समाज और सभ्यता की अपनी प्रौद्योगिकी होती है। वैश्वीकरण में विदेशी टैक्नोलॉजी भी आती है। किसी भी देश की प्रौद्योगिक आत्मनिर्भरता के लिए स्थानीय इंजीनियरों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होता है। विदेशी टैक्नोलॉजी और विदेशी इंजीनियर तो मात्र सहारा होते हैं। स्वदेश के इंजीनियर ही विदेशी टैक्नोलॉजी को स्थानीय, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आवश्यकताओं के अनुरूप परिष्कृत कर सकते हैं,; समाज के लिए उपयोगी बना सकते हैं; स्थायित्व दे सकते हैं; प्रसारित कर सकते हैं और इसे स्वदेशी टैक्नोलॉजी बना सकते हैं।

जापान ने प्रकृति की उपासना (शिन्तो) से सभ्यता के विकास का पथ अपने ढंग से तय किया। प्राकृतिक संसाधनों के अभावों से अविचलित सदैव उद्यमशील रहा। "कश्चित् नहि

1464 HA/2001—3A

मोत्ताइनाइ'' जीवन-दर्शन प्रौद्योगिकी विकास और नवाचार में भी व्याप्त है। पुष्प सज्जा (इकेबाना), चाय-पान (चादो/टी सेरेमनी) और औद्योगिक कौशल का प्रशिक्षण देकर गुणवत्ता और प्रसार को सुनिश्चित किया। यह जापान के आध्यात्मिक और भौतिक वैशिष्ट्य का द्योतक है। संसाधनों की कमी, भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाएं, परमाणु विस्फोट के परवर्ती प्रभाव, औद्योगिक प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रहार आदि अनेक समस्याओं से जापान ने संघर्ष किया। विदेशी टैक्नोलॉजी को लिया, उसे अपनाया, परिष्कृत किया, कार्मिकों को भलीभांति प्रशिक्षित किया और नई टैक्नोलॉजी बनाकर बाजार बढ़ाया। जापानी विनम्र हैं, गुणवत्ता के प्रति सचेष्ट हैं, कार्य-सौष्ठव पर बल देते हैं, टीम-वर्क उत्कृष्ट हैं, प्रत्येक कार्य को नियमबद्ध करते हैं, उनमें अपनी भाषा से अनुराग है, ईमानदारी है। कला-कौशल, औद्योगिक कौशल को सरल कार्य पदों में बांटकर सिखाते हैं। यह प्रौद्योगिकी संस्कृति जापान की पहचान बन गई है। पहली, दूसरी, तीसरी पंक्ति में क्रमशः 5, 7, 5 अक्षर/संयुक्ताक्षर वाले तीन पंक्तियों के जापानी हाइकू के ये भावानुवाद जापानियों की अस्मिता और उद्यमिता के द्योतक हैं :—

सिर उठाए	लक्ष्य दूर
मेंढ़क नकारता	चिड़िया उड़ जाती
सिर झुकाना	श्रम खोकर

संदर्भ

1. आकिओ मोरिता, ''मेड इन जापान''
   (हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, 1987)

2. ताकेशि हयाशि, ''द जापानीज एक्सपीरिएंस इन टैक्नोलॉजी-फ्राम ट्रांसफर टू सेल्फ रिलाएंस''
   (यूनाइटेड नेशन्स यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990)

3. जापान-''प्रोफाइल ऑफ ए नेशन''
   (कोदान्शा इंटरनेशनल, टोक्यो, 1994)

4. परिशिष्ट-तुलनात्मक GDP, प्रतिव्यक्ति GNP, जनसंख्या, सूचना प्रौद्योगिकी के सूचकांक, विश्व स्पर्धा सूचकांक।

1464 HA/2001—3B

परिशिष्ट :

सकल घरेलू उत्पाद एवं जनसंख्या, 1998

	GDP (US#Bn)		Per Capita GNP		जनसंख्या
	1980	1990	1999	(US $) 1999	1999
अमेरिका	2,709.0	5554	8,709	30,600	273
जापान	**1,059.2**	**2970**	**4,395**	**32,230**	**127**
जर्मनी	819.1	1720	2,081	25,350	82
फ्रांस	664.6	1195	1,410	24,940	59
ब्रिटेन	537.4	1,357.4	1,264	22,640	59
चीन	201.7	355	991	780	1,260
भारत	186.4	323	460	450	1,000

सूचना प्रौद्योगिकी के सूचकांक (प्रति हजार व्यक्ति), 1998

	TV सेट	रेडियो	टेलीफोन लाइन	मोबाइल फोन	फैक्स मशीन	पर्सनल कम्प्यूटर	इंटरनेट होस्ट
अमेरिका	847	2,146	661	256	78	459	1,509
जापान	**708**	**957**	**503**	**374**	**129**	**237**	**164**
जर्मनी	580	946	567	170	73	305	174
फ्रांस	606	948	570	188	48	208	111
ब्रिटेन	645	1,436	557	252	34	263	271
चीन	270	333	70	19	2	9	0.5
भारत	69	121	22	1	0.2	2.1	0.2

विश्व स्पर्धा सूचकांक (1999)

	वर्क एथिक्स (कार्य-सौष्ठव)	टैक्नोलॉजी एब्जोर्प्शन	प्रबंधन	इंफ्रास्ट्रक्चर	अंतर्राष्ट्रीय संबंध
अमेरिका	17	1	1	2	26
जापान	**1**	**3**	**16**	**16**	**41**
जर्मनी	8	12	6	5	11
फ्रांस	19	20	9	6	3
ब्रिटेन	30	29	19	22	14
चीन	51	54	56	46	36
भारत	53	38	37	55	49

वरिष्ठ निदेशक, सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, 6, सी जी ओ कम्प्लेक्स, नई दिल्ली-110003.

बंजारा लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

—डॉ० आर. रमेश आर्य

बंजारा लोक संस्कृति का आधार उसके मूल रूप में धर्मानुष्ठान रहा है। राजस्थान के नीतिपरक सुसंस्कृत जीवन से आलोकित बंजारे जहां भी गए, अपने संस्कारों में आबद्ध रहे। दूर-सुदूर प्रदेशों में भी उनके लोकगीतों में उनके संस्कार आचार-विचार, पारस्परिक-व्यवहार और भावनाओं में कोई व्यवधान या परिवर्तन नहीं आया। बंजारे अपनी यात्राओं में, अपने संस्कारों, लोकगीतों, लोकनृत्यों, और लोकतीर्थों से अपनी संस्कृति की पहचान बनाए रखने में सफल हुए। युगों से उनके यायावरी जीवन में भी कोई बदलाव नहीं आया किन्तु समय-समय पर स्थानीय आचार-विचारों का किंचित प्रभाव वे ग्रहण अवश्य करते रहे। उनकी संस्कृति के साथ उनके लोकगीतों, लोककथाओं में लोकनाट्य, लोक-कला, लोक-संगीत, आदि अक्षुण्ण प्रवाह बहता रहा है। इससे उनकी जाति स्मृति, जाति की पहचान और संस्कृति की एक अलग धारा आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गोवा, तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और मध्य प्रदेश में बहती रही। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत के आदिवासियों में उनके लोक-नृत्य, लोक-संगीत और भाषा, वेश-भूषा से उनकी अलग-अलग पहचान बन गई है किन्तु बंजारा जाति ने अपनी पहचान जीवटता, अभाव ग्रस्तता और एकान्तिक संस्कृति से अक्षुण्ण बना रखी है। राजस्थान से दूर प्रदेशों में, स्थान-स्थान पर उनके पड़ाव बनते गए। उन्होंने अपने टॉडों (बस्ती) को बाह्य प्रभावों से मुक्त रखा किन्तु आस-पास के टॉडों से पारस्परिक अटूट सम्बन्ध भी बनाए रखा। सुरक्षा और सामाजिक बन्धनों के कारण दूर-दूर के अंचलों और टॉडों में भी एकसूत्रता और आत्मयता बनी रही। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में, राष्ट्रीय मार्गों के समीपस्थ अंचलों में बंजारों के टॉडे अवस्थित हैं। बंजारों की एक जाति गोर या चारण नाम से अभिहित है। यह जाति राजस्थान में चारण, महाराष्ट्र में लमाणी, मध्यप्रदेश में बंजारा, आंध्र में सुगाली तथा तेलंगाना और कर्नाटक में लम्बाड़ा कहलाती है। स्थानीय लोक-संस्कृति का इन अंचलों में अवस्थित बंजारों के लोकमानस पर एक विशिष्ट संस्कृति अवस्थित होती रही। वहां की परिस्थितियों, भाषा और भौगोलिक स्थितियों का प्रभाव उन पर पड़ता रहा है। इसीलिए, उनकी परम्पराओं और रूढ़ियों में स्थानीय मिट्टी की गंध मिलती है।

बंजारों के जीवन और सामाजिक यथार्थ का चित्रण उनके लोकगीतों में व्यक्त हुआ है। क्योंकि इनका कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है। वस्तुत: बंजारो के श्रमशील जीवट स्थितयों, सक्रिय सामाजिक संघर्षों और प्रकृति-जन्य विपमताओं के बीच उनके कंठों से जो कुछ फूटा है, वही उनके लोकगीत हैं। उनकी रूढियों, परम्पराओं, अनुभव और विचार के अतिरिक्त उनके तंत्र-मंत्र और मानसिक स्थितियों ने भी असंख्य लोकगीतों का निर्माण किया है। ये लोकगीत बंजारों की मानसिक भावात्मक चेतना की अनायास अभिव्यक्ति हैं। मानव-जीवन की विकास-यात्रा में अनेक संस्कारों, अनुष्ठानों, व्रत-पूजा और धार्मिक—नैतिक परम्पराओं का उद्‌भव हुआ

किन्तु आदिवासियों में केवल जन्म, विवाह और मरण—तीन प्रमुख कर्म हैं, जिनके प्रति उनकी अधिकतर भावनाएं लोकगीतों में अभिव्यक्त होती हैं। बंजारा जाति एक सुसंस्कृत अभावग्रस्त जाति है जिसकी अपनी समृद्ध संस्कृति है। इससे स्पष्ट है कि बंजारों के कुछ गौत्र—पाड़े, वेश-भूषा, रीति-रिवाज राजपूतों से मिलते-जुलते हैं। बंजारों के जातीय वर्ग तीन प्रकार के हैं—(1) गोर बंजारा या चारण, (2) ढ़ाडी, नाई, ढालिया, सुनार आदि, (3) मथुरा या मथुरासी, ओस्लीया, भाख, मुकेरी, मुलतानी आदि। महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश के निज़ामाबाद और अदिलाबाद के टांड़ो में मथुरासी बंजारे स्थायी रूप से बस गए हैं। वस्तुतः बंजारों के टांड़े स्वतंत्र और आत्म-निर्भर हैं। जहां सुनार, नाई, ढालिया (ढोल बजाने वाले) और ढाड़ी (गायक) आदि व्यावसायिक लोगों के कारण इनके टांड़े सम्पन्न हैं। इनके पास आज पालतू पशु हैं जिनसे इनकी जीवनचर्या में कृषि, पशुपालन और व्यवसाय प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः पुराने जमाने में इनके पास बैलों, गायों के अतिरिक्त घोड़े, गर्दभ आदि पशु भी थे, जिससे लदेणी (लादने) का कार्य चलता था।

आज बंजारा जाति अपने अंचलों में इस तरह बस गई है कि लदेणी का कार्य पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। उनके स्थायी सामाजिक जीवन में स्थिरता आ गई। सरकारी सहयोग प्रथा, सामाजिक विकास में इनकी शिक्षा, उद्योग, सरकारी नौकरी की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। अनुसूचित जातियों के आरक्षण के कारण लम्बाड़ा जाति के अनेक शिक्षित युवक-युवतियां उच्च सरकारी पदों पर कार्यरत हैं। शहरी जीवन अपनाने पर भी इनकी जीवन-दृष्टि अपनी सांस्कृतिक धरोहर, परम्परा और रूढ़ियों से अलग नहीं हुई है। वे अपने आचार-विचार संस्कार की रक्षा करते हैं। जन्म, मरण, विवाह आदि अवसरों पर इनके लोकगीतों की गूंज इनके अंचलों में सुनवाई देती है। इनके जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। आज भी अपनी वेश-भूषा में सुसज्जित वे आये दिन समूहिक नृत्य-गान करते रहते हैं। संस्कारों और पर्वों आदि विशेष अवसरों पर इनके अंचलों में लोकप्रिय लोकगीत प्रतिध्वनित होते रहते हैं।

बंजारों के पर्वों के समय गाए जाने वाले इनके लोकगीतों में भक्ति और श्रद्धा ही देखी जा सकती है। जन्म और विवाह के अवसरों पर असंख्य उल्लासिक लोक कंठों से इनकी प्रसन्नता और खुशी देखने को मिलती है। इनके संस्कारों में वेद मंत्र नहीं पढ़े जाते हैं। सभी संस्कार लोकगीतों से ही सम्पन्न किए जाते हैं। वस्तुतः बंजारा अपनी अस्मिता गौरव और लोक संस्कृति से उत्प्रेरित रहता आया है। इसलिए, इनके लोकगीत उनके लोक-मानस का प्रतीत बन गए हैं। मृत्यु के अवसर पर उनके करुण लोकगीतों में मृत्यु के रहस्य और जीवन समापन के गूढ़ भावों का बोध होता है। बंजारों के लोक-मानस की अभिव्यक्ति जितनी प्रखर रूप से उनके लोकगीतों में होती है, वह दीर्घकालीन रूढ़िगत परम्पराओं और संस्कारों को स्पष्ट करती है। यद्यपि भारत की असंख्य अनुसूचित जतियों में कुछ आदिम जातियां हैं तो कुछ ऐतिहासिक-भौगोलिक परिस्थितियों से उत्पन्न हैं। बंजारा जाति वस्तुतः ऐतिहासिक-भौगोलिक परिस्थितियों से उत्पन्न हैं। एतद्‌र्थ उनमें सुनिश्चित सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक-नैतिक, पूजा-व्रतादि के संकल्पित अनुष्ठान, जन्म-मरण, विवाह के विधिवत संस्कार परिलक्षित होते हैं तथा अनेक देवी-देवता और साधु-सन्त के प्रति कृतज्ञ भाव रखती है।

बंजारा जाति में भारतीय राजस्थानी संस्कृति का प्रवाह प्रारम्भ से लेकर आज तक अटूट रहा है। अनेक शताब्दियां व्यतीत हो चलीं किन्तु राजस्थान से प्रारम्भ हुई इस संस्कृति की परम्परा आज भी सम्पूर्ण भारत भूमि में अक्षुण्ण बनी हुई हैं। विभिन्न क्षेत्रों में इसके प्रबल प्रमाण हैं। अतएव बंजारा संस्कृति दीर्घ जीवी सिद्ध हुई हैं। जीवन के विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले विभिन्न संस्कारों में से तीन संस्कार आज भी विधि विधान पूर्वक किए जाते हैं। सदियों की दयनीय जीवन पद्धति, अभाव-ग्रस्तता और आर्थिक विषमता के कारण बंजारों ने अपने आत्मनिर्भर जीवन को लोकगीतों के मधुरिम से माध्यम संजोया है, उनकी गूजों से अपने दुख:-दर्द को भुलाया है और इनकी लय में अनायास आनन्द की अनुभूति की है। इन्हीं जीवन्त लोकगीतों के आधार पर सम्पूर्ण बंजारा समाज का इतिहास मूर्तिमान हो उठता है तथा लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन इन्हीं पर अधिष्ठित है।

एक बंजारा जातीय स्मृति लोकगीत.—

"जागो गोर भाई सूते नींदे मांई
कन्ना जागछ: नींद तमार रे
जाग उठो से बाणजारा ॥ टेक॥
राठोड, चव्वाण, पम्मार, जाधव
राजपूत जात हमारी
पृथ्विराज, अमर संग, राणाप्रताप
वोभिथे बळधारी
वो बळधारी धूजा जगसारी
दशमण गे से हार रे ॥ जाग उठो ॥
सारी जगेमा गोर हमारे
बणगे वणद वेपारी
लाखो खण्डि भरदाणा दनियाँ माँ
पून्चा ये जगती माँ सारी॥ जाग उठो ॥
वो सख पाये धन से कमाये
लखूंरी किदे वेपार रे ॥ जाग उठो ॥
देखो जगेमा आज हमारी
जात घण पड़ जारी
हुन्नरविद्या सिखो से भाई
जाग उठो से नर नारी ॥ जाग उठो ॥
जागो गोर भाई सूते नींदे माँई
कन्ना जागछ: नींद तमारे रे
जाग उठो से बाणजारा"*

* श्री मनीरामजी राठौड़, बंजारा गीतमाला के सौन्जय से प्राप्त।
विपणन एण्ड निरीक्षण निदेशालय, नया सचिवालय भवन, सिविल लाईन, नागपुर-440001

भारतीय संस्कृति को उत्तर पूर्वांचल का योगदान

—अजयेन्द्रनाथ त्रिवेदी

भारतीय संस्कृति के पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों ही विचारकों ने इस संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम और जीवंततम संस्कृति कहा है। ज्ञात इतिहास की परिधि के पार अज्ञात इतिहास की सीमा आरंभ होती है। लिपिबद्ध इतिहास की अविध से भी प्राचीन है अलिखित परंतु पुरातात्विक प्रमाणों से पुष्ट इतिहास की गाथा। भारतीय संस्कृति की धारा उसी अज्ञात इतिहास के क्रोड से निकलती, पुरातात्विक प्रमाणों से पुष्ट इतिहास की पीठिका को सींचती, लिखित इतिहास के दौर से गुजरती आज हमारे पास तक पहुंची है। अल्लामा इकबाल ने इस संस्कृति के जीवंत तत्व की ओर संकेत करते हुए ठीक ही कहा है :—

ऐ आबो-रो-ए गंगा वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब, कारवां हमारा॥

————————x————————

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गए जहां से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी॥

भारतीय संस्कृति की हस्ती मिटती नहीं। काल के समाने सब कुछ मिट जाता है पर भारतीय संस्कृति की विश्व पर अमिट छाप आज भी बन हुई है। यह अमिट भाव हमारी संस्कृति को इसकी अंतर्निहित खूबियों के कारण मिला है। यह संस्कृति अनेकता में एकता को वहन करती है, इसमें 'बूंद के समुद्र' हो जाने की सहज प्रवृत्ति है, इसके लिए 'वसुधा ही कुटुंब' है। अब जब आपने सबके स्तर में अपने स्वर की खोज की हो, विशाल का एक अंग बनकर जीने की लालसा पाली हो और निज को सर्व में पहचाना हो तो आपको मिटा सकेगा कौन। भारतीय संस्कृति ने अपने इन्हीं अनुकरणीय गुणों के कारण विश्व की क्षीयमान संस्कृतियों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखी है।

इतिहास की दृष्टि के आग्रही सुधियों को हमारी संस्कृति की कथा भी कालखंडों में कहने और सुनने की आदत है। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति अलिखित इतिहास के काल से आज तक अनेकानेक जातियों, धर्मों, विश्वासों और परंपराओं के पोषकों की सामूहिक पहचान है। यह पहचान विभिन्न भाषाओं, अगणित धार्मिक विश्वासों, सहस्राधिक धार्मिक व आध्यात्मिक प्रतीकों, विभिन्न कलाओं और शिल्पों, गीतों और मंचों के माध्यम से अनादि काल से व्यक्त होती आ रही है। यह संस्कृति मधु के समान है। यदि कोई यह जानना चाहे कि इसकी किस बूंद का निर्माण किस फूल से हुआ है तो वह निराश ही होगा। भारतीय संस्कृति विश्व मनीषा के सर्वोत्कृष्ट पुष्पों के मकरंद से निर्मित एक सुगंधि है जिसे सिर्फ भारतीय संस्कृति कह कर ही

पहचाना जा सकता है। इसकी अन्य आनुषंगिक पहचान इस स्थान पर आकर अपनी अर्थवत्ता खो देती है।

उत्तर पूर्वांचल भारत का एक महत्वपूर्ण प्रदेश रहा है। राजनीतिक दृष्टि से देखें अथवा सामरिक दृष्टि से, भौगोलिक दृष्टि से विचार करें या आर्थिक दृष्टि से, उत्तर पूर्वांचल देश की पहचान बनाने में सदा ही महत्वपूर्ण रहा है। उदाहरण के लिए, चाय या पेट्रोल को ले सकते हैं। देश के अधिकांश घरों में पी जाने वाली चाय का उत्पादन उत्तर पूर्वांचल में स्थित चाय बागानों में ही होता है। देश की प्रगति में सहायक पेट्रोलियम के लिए हमारी उत्तर पूर्वांचल पर उल्लेखनीय निर्भरता रहती है। पर्यटन की दृष्टि से तो उत्तर पूर्वांचल देशों का कदाचित सबसे सक्षम क्षेत्र है।

वाणिज्य-व्यवसाय, राजनीति, सामरिक स्थिति आदि की दृष्टि से यह अंचल भारत से जिस प्रकार घनिष्ठ भाव से जुड़ा है उसी प्रकार यह अंचल देश की संस्कृति रूपी व्यक्तित्व के निर्माण से भी जुड़ा है। भारतीय संस्कृति का कोई भी वर्णन तब तक अधूरा रहेगा जब तक उसमें उत्तर पूर्वांचल के योगदान का सम्यक उल्लेख न हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भारत का राजनीतिक मानचित्र तब तक अपूर्ण है जब तक उसमें उत्तर पूर्वांचल को न दर्शाया जाए। ठीक उसी प्रकार भारत की संस्कृति की गाथा जब तक अधूरी रह जाएगी तब तक उसमें उत्तर पूर्वांचल की संस्कृति की सुंदरता को शामिल न कर लिया जाए।

उत्तर पूर्वांचल सिक्किम को मिलाकर आठ राज्यों के भौगोलिक व्यक्तित्व की सामूहिक संज्ञा है। पहाड़ों के बीच ब्रह्मपुत्र, बराक आदि नदियों के मैदानों से बना उत्तर पूर्वांचल का भौगोलिक व्यक्तित्व दृढ़ तथा मनोरम है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो इस अंचल की चर्चा पुराणों और महाभारत में तो मिलती ही है कई पुरातात्विक प्रमाण इसे और प्राचीन सिद्ध करते हैं। यहां की जलवायु अनुकूल और लुभावनी है। उपजाऊ मिट्टी और सदानीरा नदियों के इस प्रदेश मे मूगा और एंडी जैसे रेशमी वस्त्रों के उत्पादन के साथ स्थानीय स्तर पर सूत भी पैदा किया जाता है। इस प्रकार भोजन और वस्त्र जैसी मूलभूत वस्तुओं की सहज उपलब्धि वाले इस प्रदेश में संस्कृति के फूल का खिलना और उस फूल की सुगंधि का विश्वव्यापी होना स्वाभाविक ही है।

भोजन वस्त्र और आवास जैसी नितांत भौतिक आवश्यकताओं से तुष्ट उत्तर पूर्वांचल के लोगों ने कला शिल्प नृत्य गीत और परंपराओं की दृष्टि से अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। समय बीतने के साथ इस पहचान का असर गहरा होता गया। शीघ्र ही उत्तर पूर्वांचल की यह पहचान भारत की पहचान बन गई है।

उत्तर पूर्वांचल जनजातियों की रंगभूमि है। इसे विद्वानों ने "नृतत्व शास्त्रियों का स्वर्ग" (anthropologists' paradize) कहा है। यहां एक ओर तो आर्य जाति के लोगों का निवास है तो दूसरी ओर मंगोल, आष्ट्रिक, चीनी, तिब्बती और अन्य प्रजातियों के लागों का भी। विभिन्न प्रजातियों के ये जन समूह विभिन्न भाषाएं तो बोलते ही हैं विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाते और नृत्यगीत आदि से अपना मनोरंजन करते हैं। इनकी भाषाओं में यद्यपि ऊपरी तौर पर काफी अंतर दीखता है पर शोधार्थियों के अनुसार इनमें अन्तर्निहित समता के सूत्र भी पाए जाते हैं। इन भाषाओं में कुछ की तो अपनी लिपियां हैं पर अधिकांश वाचिक परम्परा तक ही सीमित हैं।

असम और मणिपुर उत्तर पूर्वांचल के दो ऐसे राज्य हैं जिनके धर्म और नृत्यगीत को सर्वभारतीय पहचान मिल चुकी है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उत्तर पूर्वांचल की जिन दो भाषाओं को स्थान मिला है वे भी क्रमशः असम और मणिपुर में बोली जाने वाली भाषाएं, असमिया तथा मणिपुरी ही हैं। इन दोनों भाषाओं की अपनी विकसित लिपि भी है। असमिया भाषा तो आज भी असमिया लिपि में लिखी जाती है परंतु मणिपुरी भाषा की अपनी लिपि (मणिपुरी) अब लोगों को उतनी प्रिय नहीं रही है। मणिपुरी लोग अपनी भाषा को बंगला लिपि में लिखना पसंद करते है। त्रिपुरा अपने ऐतिहासिक काल से ही इस अंचल का विशिष्ट भाग रहा है। यहां की मुख्य भाषा बंगला है। इसके अतिरिक्त मेघालय, मिजोरम, नागालैंड तथा अरूणाचल प्रदेश जनजातीय बहुल राज्य हैं। इनकी पहचान का आधार है इन प्रदेशों में रहने वाले जनजातीय समुदाय की परंपरा, आचार-व्यवहार, धर्म और विश्वास।

उत्तर पूर्वांचल ने भारत की संस्कृति कर परंपरागत वैष्णव भावधारा को भी पुष्ट किया है। असम में युगपुरूष शंकरदेव ने अपनी अलौकिक प्रतिभा और विशिष्ट भक्ति प्रवणता के द्वारा असम में, जहां कभी तंत्र का बोल-बाला था, वैष्णव भावभूमि का निर्माण किया। मणिपुर में राजर्षि भाग्यचंद्र ने गोविंदजी के विग्रह की स्थापना और उनके गुण कीर्तन का प्रचार करके युगों से बहती आ रही कृष्ण-भाव सरिता से मणिपुर को आप्यायित किया। भक्ति मार्ग को गोविंदजी भाव ने वही योगदान दिया है जो दक्षिण के भक्त संत वल्लभाचार्य अथवा उत्तर के भक्त कवि सूरदास ने दिया है। इस परंपरा में उत्तर पूर्वांचल के वैष्णव संतों ने मूल चिंतन में अपनी ओर से कुछ जोड़ा और सनातन विचार की प्रासंगिक व्याख्या प्रस्तुत की। असम में आकर श्री कृष्ण भक्ति अद्वैतवादिनी हो गई और मणिपुर में जाकर उसको ललित श्रृंगार मिला।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य यहां की संस्कृति के अग्रदूत कहे जाते हैं। इन नृत्यों में असम के सत्रीय नृत्य और मणिपुरी के मणिपुरी नृत्य का उल्लेखनीय स्थान है। कथानकों को साथ ले, विशिष्ट पोषाकों में सजे सत्रीय नृत्य के कलाकारों अथवा मणिपुरी नृत्य के प्रस्तोताओं ने भारतीय शास्त्रिय नृत्य प्रस्तुति में अपनी अलग पहचान बनाई है। इन नृत्य शैलियों के साथ पारंपरिक तालवाद्य भी बजाय जाते हैं जिनकी अपनी अलग अपील होती है। सत्रीय नृत्य जिसे कभी-कभी शंकरी नृत्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है, महाप्रभु शंकरदेव की सृष्टि है। आरंभ में वे सत्रों अथवा नाम घरों में प्रस्तुत किए जाते थे। आंचलिक प्रस्तुतियों को शास्त्रीय आधार तथा वैष्णव विषयवस्तु देकर महाप्रभु शंकरदेव ने इसे असम की पहचान के रूप में प्रोत्साहित किया। मणिपुरी नृत्य मूलतः स्थानीय नृत्य शैली पर ही आधारित है जिसमें गोविंदजी के धार्मिक भाव का तत्व जुड़ गया है। राधा और कृष्ण को विषय बनाकर संवादशैली में प्रस्तुत मणिपुरी नृत्य तन्मय कर देने में अपना उदाहरण स्वयं है।

सांप्रदायिक संप्रीति सदा से ही भारतीय संस्कृति की विश्रुत विशेषता रही है। सांप्रदायिक संप्रीति की उत्तर पूर्वांचलीय परंपरा भारतीय परंपरा का विस्तार भी है और पूरक भी इस अंचल में विश्व के प्रमुख धर्मों का सहअस्तित्व अनुकरणीय है। असम की राजधानी दिसपुर से प्रायः 45 कि.मी. की दूरी पर स्थित हाजो नामक स्थान पर हिंदू-मुस्लिम ईसाई और बौद्ध धर्मावलंबियों का

पवित्र तीर्थ है। यह स्थान समस्त उत्तर पूर्वांचल के धर्मप्राण लोगों की श्रद्धा का विशिष्ट केंद्र है। इस अंचल में एक ओर तो अरूणाचल प्रदेश में बौद्धों का त्वांग मठ है तो दूसरी ओर शिवसागर जिस में अजान फकीर की मज़ार है। असम की पूर्ववर्ती और मेघालय की वर्तमान राजधानी शिलांग में कई ऐतिहासिक गिरिजाघर है। धुबरी, जो ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर बसा एक ऐतिहासिक नगर है, गुरू गोविंद सिंह के पधारने से पवित्र हुआ है। जिस स्थान पर गुरूजी ठहरे थे, आज वहां खड़ा भव्य गुरूद्वारा सिख समाज की श्रद्धा का राष्ट्रीय केंद्र है। गुवाहाटी में स्थित मां कामाख्या मंदिर हिंदुओं के मान्य 51 शक्तिपीठों में एक है। इसका पौराणिक महत्व है। हाल ही में बनकर तैयार हुआ गुवाहाटी का तिरूपति मंदिर तो उत्तर दक्षिण भारत की आध्यात्मिक एकता का ज्वलंत उदाहरण ही है।

भारतीय संस्कृति के साक्षात् प्रतीकों में पुरातात्विक महत्व की प्रचीन इमारतों, मंदिरों का मुख्य स्थान है। इस दृष्टि से भी उत्तर पूर्वांचल ने भारतीय संस्कृतिक प्रतीकों को महत्वपूर्ण योगदान दिया है। असम के धुबरी जिले में स्थित मीजुमला का मस्जिद, शिवसागर जिले का प्रसिद्ध शिव दोल (मंदिर) रंगघर, करेंगघर और तलातलघर मध्ययुगीन स्थापत्य कला के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। त्रिपुरा का त्रिपुरेश्वरी मंदिर और राजप्रासाद जहां अपनी बनावट की विलक्षणता का प्रतीक है वहीं तेजपुर के गढ़ के भग्नावशेष इतिहास की प्राचीनता के स्मारक हैं।

उत्तर पूर्वांचल ने भारतीय मूर्ति शिल्पकला को भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। गुवाहटी के समीप स्थित मदन कामदेव में स्थित मूर्तियों को देख ऐसा लगता है कि वह खुजराहो, कोणार्क के बाद भारतीय मूर्ति शिल्प का तीसरा पद निक्षेप है। यहां के प्राय: सभी प्रांतों में पुरातात्विक महत्व की मूर्तियां मिली हैं और भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के तत्वाधान में की जा रही खोजों में और मूर्तियां मिल रही हैं। इस अंचल में मिली पत्थर और मिट्टी की मूर्तियां यदि अन्य भागों में मिली भारतीय मूर्तियों से तुलनीय हैं तो यहां की काष्ठ मूर्तिकला भारत में अतुलनीय है। असमिया संस्कृति के केंद्र, सत्रों में काष्ठ मूर्तिकला का जन्म हुआ। असम स्थित विभिन्न सत्रों में काष्ठ की कृष्ण, राधा, विष्णु, हनुमान, गरूड़ आदि की छोटी और बड़ी मूर्तियों का निर्माण कौशल उल्लेखनीय है।

संस्कृति की पहचान यदि अभिजात से होती है तो इसका तानाबाना ''लोक'' बुनता है। लोक वह तत्व है जिससे समस्त कलाएं जन्म लेती और प्रसिद्धि पाती हैं। लोक गीत, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक साहित्य और लोक विश्वास ही समय बीतने के साथ अभिजात के रूप में प्रसिद्ध होते हैं। उत्तर पूर्वांचल अपनी लोक सम्पदा के लिए भारत ही में नहीं विश्व में जाना जाता है। यह दु:ख की बात है कि इस क्षेत्र की लोक संपदा का यथोचित अनुसंधान और सकारात्मक मूल्यांकन नहीं किया गया। पर बादल में सूर्य आखिर कब तक छिपा रह सकता है ? लोक अपनी विशिष्टताओं के कारण देर सवेर अपनी पहचान स्वंय ही रखता है। उत्तर पूर्वांचल के लोक तत्वों ने भारत की संस्कृति का, अजाने ही, उत्कृष्ट शृंगार किया है।

उत्तर पूर्वांचल के लोक तत्व ने भारत की लोक पहचान बनाई है। आज हम जिन इथनिक प्रिंटों, कलाकृतियों, संगीत की धुनों को भारत की पहचान के रूप में विश्व के समक्ष

प्रस्तुत करते हैं उनमें अधिकांश का प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध उत्तर पूर्वांचल से है। उत्तर पूर्वांचल के लोक तत्व के समसामयिक ध्वजवाहक हैं डा. भूपेन हजारिका। अपनी संगीत रचनाओं में यदि उन्होंने पाश्चात्य लोक तत्व को शामिल किया है तो उत्तर पूर्वांचल के लोक तत्व को विश्व के समक्ष प्रक्षेपित भी किया है। उत्तर पूर्वांचल के लोक तत्व के चटकीले रूप ने हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार अज्ञेय को काफी प्रभावित किया। उन्होंने न सिर्फ इस अंचल की यात्रा की वरन यहां की विशेषताओं से भारत को अवगत भी कराया। असम की चाय जनजाति के लोगों का सामूहिक नृत्य ''झूमर'' हो या अरूणाचल की आदि जनजाति का पारंपरिक नृत्य ''पुनंग'' हो अथवा मणिपुर का ''लाइहारोवा'' ये सब भारत की विविधतामयी संस्कृति की क्षेत्रीय अभिव्यक्तियां ही हैं। भारतीय लोक नृत्यों का नयनाभिराम रंगपटल उत्तर पूर्वांचल के लोकनृत्यों की विविधता, उन्मादकता और बहुलता की दृष्टि से अपनी विशेष पहचान रखता है।

नृत्य जिस प्रकार उत्तर पूर्वांचलीय जनजातियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है उसी प्रकार वाद्य उनके उच्छल संगीत के सहचर। इस अंचल में यूं तो प्रायः सभी प्रकार के परंपरापगत वाद्य पाए जाते हैं पर सुषिर और आनद्ध वाद्य की बहुलता के लिए इस अंचल की अपनी राष्ट्रीय पहचान है। सुषिर वाद्य में बांसुरी तथा पेपा को यहां के लोकसंगीत में सम्माननीय स्थान प्राप्त है। बांसुरी को शिफुंग तथा बांही के नाम से भी जाना जाता है। आनद्ध वाद्यों में ढील और मृदंग का महत्वपूर्ण स्थान है। मेघालय की गारो जनजाति के लोग इसे अपने लोकप्रिय उत्सव बांगला के अवसर पर समारोहपूर्वक बजाते हैं। सात दिनों तक मनाया जाने वाला बांगला उत्सव फसल कटाई के अवसर पर आयोजित किया जाता है। नृत्य के समय वाद्य के साथ कहीं-कहीं जनजातीय लोग अपने हाथों में हथियार भी रखते हैं। दुर्गम प्रदेशों में रहने वाली जनजातियों के लिए हथियार किसी साथी की तरह आवश्यक होते हैं। इसे वे किसी भी समय अपने से अलग नहीं कर सकते, स्वाभाविक है, नृत्य के समय भी नहीं।

बुनाई और शिल्पकारिता की भारतीय परंपरा के चुड़ान्त निदर्शन हैं। उत्तर पूर्वांचल की बुनाई और शिल्पकारिता के उत्तम उदाहरण। बुनाई तो उत्तर पूर्वांचलीय नारी समाज की धमनियों में निहित है। जितनी जनजातियां उतनी विविध उनकी बुनाई। किसी जनजाति को आड़ी-तिरछी डिजाइनों की बुनाई प्रिय है तो किसी को ज्यामितीय आकृतियां। कुछ अपनी बुनाई में पशु पक्षियों के डिजाइन बनाते हैं तो कुछ फूलपत्तियों के। डिजाइनों की भिन्नता और रंगों के विशिष्ट संयोजन की दृष्टि से जनजातीय बुनाई कला को अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली है। भारत के हस्तशिल्प के लिए उसे दुनिया में सम्मान प्राप्त है पर भारत में हस्तशिल्प को यदि किसी एक अंचल ने उल्लेखनीय ऊंचाई दी है तो वह उत्तर पूर्वांचल ने। अन्य भागों में जहां पत्थर, धातु आदि बहुमूल्य वस्तुओं को लेकर हस्तशिल्प का प्रदर्शन किया जाता है वहां उत्तर पूर्वांचल में अपेक्षाकृत उपेक्षित बांस, काष्ठ, मिट्टी, शोला, बेंत आदि को हस्तशिल्प का उपादान बनाया जाता है। हस्तशिल्प के उत्पादन से यह अंचल आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी तो बनता ही है इसके माध्यम से यहां के लोगों की प्रतिभा भी प्रकाश पाती है।

संस्कृति के जितने भी उद्घाटक उपादान हैं वे सभी उत्तर पूर्वांचल में अपनी उन्नतावस्था में हैं। भारतीय संस्कृति का जिज्ञासु जब तक उत्तर पूर्वांचल की समृद्ध संस्कृति की एक झलक नहीं पा जाता उसे संतोष नहीं होता । भारतीय संस्कृति की पहचान किसी एक धार्मिक विश्वास, संस्कार, परंपरा अथवा भाषा से नहीं बनती। यह अनेक की पहचान होकर एक हो जाने से बनती है। इस दृष्टि से विचार करें तो उत्तर पूर्वांचल भारतीय संस्कृति की प्रयोगशाला के रूप में उभरता नजर आता है। भारतीय आर्य ग्रंथों में समवाय एवं साधु अर्थात् ''संघटन ही श्रेष्ठ है'' ऐसा कहा गया है। यह संघटन यदि विलक्षण ढंग से भारत के किसी अंचल में संभव हुआ है तो वह उत्तर पूर्वांचल ही है।

भूमि, परंपरा, भाषा, जाति, प्रजाति, रीति-रिवाजों और धार्मिक विश्वासों में भारी अंतर रहते हुए भारतीय संस्कृति सदा से ही एक रही है। यह कथन उत्तर पूर्वांचल को देख कर ही अनुभूति का विषय बनता है। गुरूदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने भारत तीर्थ में ''महामानवेर सागर तीरे'' कहकर भारत भूमि की महिमा गाई है। वह भारत भूमि यदि अपनी समस्त विलक्षणताओं के साथ कहीं एक जगह प्रकट होती दीख पड़ती है तो उत्तर पूर्वांचल में ही। एक लंबे समय से शेष भारत से लगभग अनजान से रहे उत्तर पूर्वांचल ने मूक भाव से भारतीय संस्कृति के आधार को लगातार पुष्ट किया है। भारतीय संस्कृति के अन्वेषकों को आज उत्तर पूर्वांचल के योगदान का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति ने आज अपनी जो पहचान बनाई है उसमें उत्तर पूर्वांचल का महत्वपूर्ण योगदान है। यह अंचल भारत के सांस्कृतिक प्रभामंडल में रहा है पर एक दास की तरह नहीं एक सक्रिया भागीदार की तरह। संस्कृति के क्षेत्र में भारत ने जो भी प्रयोग किए उत्तर पूर्वांचल में उसकी परीक्षा हुई। कहते हैं— ''विद्यावतां भागवते परीक्षा'' विद्वानों की विद्वता भागवत में जांची जाती है। भारतीय संस्कृति के कुछ उदात्त मूल्य भी और कहीं नहीं उत्तर पूर्वांचल में ही परीक्षित, प्रमाणित और प्रचलित होते हैं। नारियों को जिस सम्मान का अधिकारी भारतीय संस्कृति में ठहराया गया है, वह अपने वास्तविक रूप में उत्तर पूर्वांचल में ही मिलता है, नानत्व में जिस एकत्व का दर्शन भारतीय ऋषियों ने किया है वह सबसे मुखर यहीं है।

समकालीन इतिहास में विभिन्न घात प्रतिघातों का शिकार उत्तर पूर्वांचल वास्तव में वैसा नहीं रहा जैसा हम आज इसे देखते हैं। इसने सभ्यता का उषा:काल देखा है, इसने साहित्य संगीत और कला के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किए हैं। इसने भारत को वह पहचान दी है जिसके अभाव में यह विश्व में ''महामानवेर सागर'' नहीं बन पाता। भारत दुनिया में यदि संस्कृति गुरु के आसन पर अपना दावा करना चाहता है तो इस दावे को मजबूत करने में उत्तर पूर्वांचल की महत्वपूर्ण देन है। यह एक हकीकत है। इस अंचल ने भारतीय संस्कृति को ज्ञात रूप में जितना दिया है अज्ञात रूप में उससे कहीं ज्यादा प्रभावित किया है। आने वाले समय में शायद इस अवदान का सार्थक मूल्यांकन हो सके।

राजभाषा अधिकारी, यूको बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय शिलपुखुरी, गुवाहाटी-781003.

रामचरित मानस में तान्त्रिक संकेत—भाग-2

—डॉ० राजकुमारी शर्मा

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास भारत के ही नहीं अपितु विश्व के उन मूर्धन्य महाकवियों में से हैं जिन्हें पाकर कविता-कामिनी धन्य हो गई। मानसकार ने अपने मानस में अन्यानेक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। वे आदर्श-सांस्कृतिक जीवन के ही पक्षधर नहीं थे अपितु सर्वतोमुखी काव्यात्मक प्रतिभा एवं सूक्ष्म और सारग्राहिणी दृष्टि के भी धनी थे। उन्होंने जिस विषय का स्पर्श किया, उसे प्रौढ़ता के चरम सोपान पर पहुंचा दिया। उनकी कलम का स्पर्श पाकर काव्य-स्वर्ण कुन्दन बन गया।

मानसकार के व्यक्तित्व की दृष्टि से परखने पर भी वे मूलत: समष्टिवादी जीवन दृष्टि के पुरोधा एवं प्रेरक प्रतीत होते हैं। वे कलाभिसेवी युग पुरुष ही नहीं प्रत्युत समदर्शी योगी पुरुष एवं उच्च कोटि के तन्त्र-ज्ञाता भी थे जिसका उद्‌बोध हमें रामचरित मानस में जगह-जगह प्राप्त होता है। "मानस" का प्रस्तावना प्रकरण इस तथ्य का साक्षी है। महाकवि को अपने समकालीन पण्डितों का कटु विरोध सहना पड़ा। कहने का तात्पर्य यह है कि "मानस" का सृजन अत्याधिक संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में हुआ। बाद में महाकवि ने अपने प्रतिपक्षियों को अभिभूत कर दिया। महाकवि अन्यानेक गुणों के अतिरिक्त एक उत्कृष्ट तन्त्र-साधक भी थे और उनका "मानस" साधना का एक उत्कृष्ट स्रोत। इसका उद्‌बोध हमें "जो सुमिरत सिधि होय मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ भवानी शकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।" "याभ्यां" विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वान्त: स्थमीश्वरम्।। (1) इत्यादि मांगलिक अभिव्यक्तियों से प्रतीत होता है।

"सिधि होय[2]" यहां पर चतुर्दशसिद्ध विद्याओं के लिए प्रयुक्त है। ये चतुर्दशसिद्ध विद्याएं साधक के लिए उत्कृष्ट से उत्कृष्ट विद्या उपलब्ध कराने में सहायता करती हैं। इन सिद्ध विद्याओं को भी सिद्ध करने के लिए वन्दना का जो क्रम गणेश तन्त्र एवं अन्य तन्त्रशास्त्रों में उपलब्ध है उसी का अनुसरण तत्त्वदर्शी महापुरुष गोस्वामी जी ने अपने रामचरितमानस में किया है। सर्वप्रथम विघ्नविनाशक गणेश का स्मरण तत्पश्चात् शिव-पार्वती एवं गुरु की अराधना करते हैं। तान्त्रिक-साधक गुरु को शिव रूप में स्वीकार करते हैं। इसी कारण शंकर-पार्वती के नमस्कार के पश्चात् ही "बन्दउं गुरुपद-पदुम परागा" के द्वारा अपने गुरु को एक विशिष्ट स्थान दिया है। तन्त्र-शास्त्रों में उल्लिखित है कि जो तान्त्रिक गुरुपूजा के बिना अपनी साधना का आरम्भ करते हैं उनकी साधना में अन्यानेक विघ्न-बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं। इसके पश्चात् "सीता-रामगुणग्रामपुन्यारण्यविहारिणै" इत्यादि के द्वारा अपने इष्टदेव की वन्दना की है जो

(1) रामचरितमानस—बालकाण्ड

(2) भाग-1 एवं विस्तृत विवरण हेतु—यू० एस० एम० पत्रिका-गाजियाबाद का सितम्बर-अक्तूबर 1999 का अंक देखें।

तन्त्रशास्त्रानुकूल है। अत: इससे सिद्ध होता है कि महाकवि तुलसीदास एक सिद्धहस्त-तान्त्रिक थे। महाकवि के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उन्हें अपने इष्टदेव भगवान श्रीराम के दर्शन प्राप्त हुए थे। यह सत्य प्रतीत होता है—यह चतुर्दश विद्याओं के द्वारा ही सम्भव हुआ—इसी कारण उन्होंने महाकाव्य में काव्य की सर्वोत्कृष्ट ऊंचाइयों को छुआ।

शक्ति तत्व और विद्या तत्व ये दोनों तत्व तान्त्रिकों के रहस्यात्मक तथ्यों के साक्षात्कार के परमावश्यक तत्व माने गए हैं जिसका दिग्दर्शन ''मानस'' में ''सीया राम मय सब जग जानी'' के द्वारा किया गया है। जगत् जननी ''सीता''—शक्ति तत्व की प्रतीक है तथा राम ''विद्या तत्व'' के प्रतीक हैं। ये दोनों तत्व ही आत्म तत्व का परिज्ञान कराते हैं। मानस में सीता शक्ति तत्व के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। स्वामी जी ने इसकी प्रतिष्ठा कई जगह पर की है, देखें :—

''सुनहु प्रिया व्रत रूचिर सुसीला। मैं कछु करवि ललित नर लीला
तुम्ह पावक महुं करहू निवासा। जो लगि करौ निसाचर नासा।।''

अग्नि प्रवेश, तान्त्रिक-साधना की रहस्यम विद्याओं के द्वारा ही सम्भव है। इस अग्नि-प्रवेश के द्वारा यह प्रमाणित हो जाता है कि मानस में ''सीता'' शक्ति रूप में प्रतिष्ठित हुई है। अग्नि प्रवेश के पश्चात् सीता अपना माया का रूप धारण कर लेती है। सीता का यही माया अथवा छाया रूप-लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्नि में भस्म हो गया तथा शक्ति रूप सीता अपने स्वाभाविक रूप में वहीं से पुन: प्रकट हो गई। सीता के माया रूप अथवा छाया रूप के अग्नि में भस्म हो जाने से महाकवि का 'काह न पावक जरि सके। का न समुद्र समाई। का न करे अबला प्रबल, के हि जग कालु न खई।' लिखना सही एवं सार्थक सिद्ध हुआ जिसको कई साहित्य मर्मज्ञ विरोधाभास संज्ञा देते हैं। यद्यपि 'राम' अर्थात्-विद्या तत्व के इस रहस्य को कोई भी देख न सका (1) कारण इसे देखने के लिए मायापति राम तथा प्रत्यक्षदृष्टा महाकवि तुलसी की विशेष दृष्टि (शोध परक दृष्टि) से देखना पड़ेगा। उपयुक्त प्रंसग में वशीकरण, आकर्षण, मारण आदि अनेक तान्त्रिक प्रक्रियाओं का रहस्य उद्धृत किया है। संक्षेप में राम स्वयं सीता की मोहिनी शक्ति में आबद्ध हुए, उनका स्वर्ण मृग पर आकर्षण हुआ इससे पूर्व भी विश्वमित्र के यज्ञ की रक्षार्थ राम ने यज्ञ विध्वंस

---

(1) श्री खण्ड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोशलेस महेस वंदित चरन रति अति निर्मली।।
प्रतिबिंब अरू लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुं जरे।
प्रभु चरित काहूं न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।।

(1क) मुनि मख राखन गयउ, कुमारा।
विनु फर सर रघुपति मोहि मारा।।
सत जोजन आयऊं छन माहीं।
तिन सन बयरू किये भल नाहीं।।

करने वाले राक्षसों पर जिस बाण का प्रहार किया वह कोई घातक प्रहार नहीं था वरन् उस प्रहार की क्रिया "दूरापसरण" की क्रिया थी जिसका अभिव्यक्तिकरण मानस में हुआ है। (1क)

शक्ति तत्व के भी वो रूप होते हैं एक सौम्यरूपा (देवी शक्ति) द्वितीय असौम्य रूपा (आसुरी शक्ति)। सौम्यरूपा अपार सौन्दर्य एवं अनेक प्रकार के आकर्षण से युक्त शक्ति है जो जगत् के कल्याणार्थ सदैव तत्पर रहती है, तथा असौम्यरूपा शक्ति को हमेशा परास्त करती रहती है। कभी-कभी इसमें आसुरी एवं तामसी शक्तियों का मोहन भी होता है। इसीलिए, सीमा की सौम्य शक्ति से आकर्षित रावण एक उत्कृष्ट कोटि का तान्त्रिक साधक होता हुआ भी आसुरी शक्ति के मद में इतना मदान्ध हो गया कि न तो वह शक्ति तत्व से युक्त सीता के आकर्षण से आपको बचा सका और न ही करोड़ों अघोरी तान्त्रिक (उपायों) साधनाओं से भी अपने अपने प्राण बचा पाया। इससे सिद्ध पुरूष तुलसीदास ने सौम्य रूपा शक्ति के द्वारा असौम्यरूपा शक्ति को परास्त किया है।

महाकवि ने विद्या तत्व की प्रतिभा के आधार पर सौम्यरूपा शक्ति के अनेक रहस्य मानस में अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त किए हैं। (1) स्वयं राम ने सीता की सौम्यरूपा शक्ति से प्रभावित होकर ही नरश्रेष्ठ का रूप धारण किया। किष्किन्धा काण्ड के प्रारम्भ में ही 'माया मानुष रुपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मो हितौ' के माध्यम से इस अभिप्राय: को अभिव्यक्त किया है। अनेक प्रकार के कौतुकों को उपस्थित करने वाले मायाकार पुरूष का रूप धारण कर राम ने अद्‌भुत लीलाएं प्रस्तुत की हैं जो वाणी एवं समस्त इन्द्रियों से अगम्य हैं। इसी तथ्य की पुष्टि लंका काण्ड के इस प्रसंग से भी होती है :—

महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वती! रघुनाथ जी मनुष्य लीला कर रहे हैं जैसे—सर्पों के समूह में मिलकर गरुड़ खेलता हो। भौंह को टेढ़ा करते ही जो काल को भी खा जाए, उसे क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है। (2)

---

(1) तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे।
उठि-उठि परिहरि सनाह अभागे। जहं-तहं गाल बजावन लागे।।
लेहु छड़ाई सीय कह कोऊ। धरि बांधहु नृप बालक दोऊ।
तोरें धनुष चाड़ नहीं सरई। जीवत हमहिं कुआंरे को बरई॥

बालकाण्ड

(2) उमा करत रघुपति नर लीला। खेल गरूड जिमि अहिगन मीला।
भृकुटि भंग कालहिं जो खाई। ताहि किं सोहइ ऐसी लराई॥

लंकाकाण्ड

(2क) दीखि जाइ उपबन बर सर बिगसति बहु कुंज।
मंदिर एक रुचिर तहं बैठि नारि तप पुंज॥

किष्किन्धाकाण्ड

किष्किन्धा काण्ड में ही सीता की खोज में गए हुए वानरों को प्यास लगती है— वे पानी की खोज में हैं कि अचानक हनुमान को एक कौतुक दिखाई पड़ता है। एक मन्दिर में तपोमूर्ति नारी बैठी है। वह समस्त कोतुक क्रियाओं की अधिष्ठात्री देवी ही सौम्य रूपा शक्ति है। (2क) यह शक्ति उपासना करने से समस्त सांसारिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्रदान करती है। इसी प्रकार के अनेक प्रसंग मानस में उपलब्ध हैं।

असौम्यरूपा शक्ति का स्वरुप हम कैकेई के कोपभवन के प्रसंगों से उद्धृत कर सकते हैं। शक्ति जब माया से सम्बद्ध होकर कार्य करती है तब उसके कार्य ऐन्द्रजालिक के समान दिखाई देते हैं। वह प्रचण्ड रुप धारण करके प्रहार आदि असौम्य कृत्य करने लगती है । कैकेई की वेषभूषा, उसकी कर्कष वाणी इत्यादि असौम्य शक्ति की द्योतक हैं। असौम्य रुपा शक्ति यद्यपि प्रत्यक्ष रुप से वीभत्स एवं अस्पृहणीय प्रतीत होती है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर उसके कार्य भी लोकोपकारक बन पड़ते हैं। जिस प्रकार कैकेई ने भी देवासुर संग्राम में रथ की धुरी टूटने पर अपनी कनिष्ठा उंगली को धुरी के स्थान पर स्थापित कर दिया था परिणामस्वरुप दशरथ के प्राण बच सके तथा शत्रुओं को भी पराजित कर पाए। इसी प्रकार रावण, कुम्भकरण, मेघनाद, सूपर्नखा, त्रिजटा, लंकिनी, मन्थरा इत्यादि के चरित्रों में हमें शक्ति के असौम्य रुप के ही दर्शन होते हैं। जगत जननी की प्रचण्ड लीलाओं को मानसकार ने अपने मानस में अनेक पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

कैकेई के असौम्य रुप का कुछ भार कम करने के लिए स्वामी जी ने देवताओं के माध्यम से सरस्वती से कहलवाया कि हे माता इस बड़ी विपत्ति को देखकर आज वही उपाय कीजिए जिससे राम राज्य छोड़कर वन को चले जाएं इस कार्य को करने से तुम्हें कुछ दोष नहीं लगेगा। (1) कारण राम विस्मय, हर्ष से रहित है। जीव अपने कर्म के वश में होकर सुख और दु:ख का भागी होता है। अत: देवताओं की भलाई हेतु हे सरस्वती तुम अयोध्या जाओ। (2)

मर्यादा पुरुषोत्तम राम विस्मय एवं हर्ष-विषाद से रहित हैं फिर भी वे इन सब का अवलम्ब लेकर सांसारिक लीलाएं करते हैं। सीता के विरह से व्याकुल राम तथा लक्ष्मण की संज्ञा शून्यता पर राम का विलाप-इत्यादि इसके कुछ उदाहरण हैं। (3)

---

(1) 'मातु तोहि नहीं थेरिउ खोरी' अयोध्या काण्ड

(2) बिसमय हरण रहित रघराउ । तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ॥ अधोध्या काण्ड

(3)(क) धन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥किष्किन्धा काण्ड

(ख) प्रभु विलाप सुनि कान, विकल भये बानर निकर ।

(ग) आय गयउ हनुमान, जिमि करूना महं वीर रस ॥ लंका काण्ड

(घ) बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन । स्रवत सलिल राजिवदल लोचन ।

उमा अखण्ड एक रघुराई । नर-गति भगत कृपाल देखाई ॥ लंका काण्ड

सौम्य रुपा शक्ति के साथ संयुक्त होकर ही राम हर्ष-विषाद इत्यादि की लीलाएं दिखा पाने में समर्थ हुए। वस्तुः राम इनसे रहित हैं। यह सब कृत्य बिना तन्त्र साधना के सम्भव नहीं है।

जो कैकेई 'राम' को अपने पुत्र भरत से भी अधिक चाहती है वही मन्थरा के कहने मात्र से इतनी कठोर हृदया बन गई कि न केवल भरत को 'राजा' बनवाना चाहती है वरन् राम के लिए चौदह वर्षों का बनवास भी मांगती है। मन्थरा ने कैकेई को बुरा पाठ पढ़ाकर ऐसा कठोर बना दिया जैसे उकठा काठ फिर नहीं झुकता। (1) आगे मन्थरा ने 'सुनि कुबरी तिय माया ठानी' के द्वारा त्रिया-चरित्र की माया फैलाकर विभिन्न प्रकार की वशीकरणादि तान्त्रिक प्रक्रियाओं द्वारा कैकेई को अपने वशीभूत कर लिया। यहां तक कि कैकेई इस प्रकार कहने लगी—हे मन्थरा मैं तेरे कहने से कुएं में गिर सकती हूं, पुत्र तथा पति का त्याग कर सकती हूं। (3) यहां भली भांति विचार करने पर पता लगता है कि बिना तन्त्र साधना के मन्थरा यह कार्य कैकेई से नहीं करा सकती थी। कैकेई जब पुत्र और पति का त्याग कर देगी तब राम का वनवास क्यों ? भरत का राजतिलक क्यों ? उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि मन्थरा भी तन्त्र-साधना में सिद्ध-हस्त थी। स्वयं कैकेई भी आसुरी शक्ति की प्रतीक है। इसी प्रसंग में आगे गोस्वामी जी लिखते हैं कौन सी ऐसी वस्तु है, जिसे आग जला नहीं सकती, समुन्द्र में क्या नहीं समा सकता, स्त्री क्या नहीं कर सकती और संसार में काल किसे नहीं खा जाता। (4) महाकवि ने अग्नि-प्रवेश के समय 'सीता' को नहीं वरन् उनकी प्रतिच्छाया मात्र को अग्नि में प्रवेश कराया था।

---

(1) कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि ननवहू फिरिउक ठिकुकाठू॥ (अधोध्या काण्ड)

(2) अयोध्या काण्ड

(3) परउं कूप तुअ बचन पर सकउं पूत पति त्यागि।
कहसिं मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥ अयोध्या काण्ड

(4) काह न पावकु जारि सके का न समुन्द्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालू न खाइ॥ अयोध्या काण्ड

अग्नि-परीक्षा के समय अम्बा ने 'राम' नाम का स्मरण करके चन्दन के समान शीतल अग्नि में प्रवेश किया और कहने लगी कि जिनके चरणों की अत्यन्त निर्मल धूल की महादेव जी भी वन्दना करते हैं—उन कोशलपति राम की जय हो। सीता जी का छाया रूप लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्नि में जल गया। प्रभु राम के इस चरित्र को कोई भी नहीं देख सका, यद्यपि देवता, मुनि सिद्धजन आकाश में खड़े देखते हैं। यहां यह द्रष्टव्य है कि सीता की प्रतिच्छाया के जलने से 'काह ने पावकु जारि सक' सही सिद्ध हो गया। यह अलग बात है कि सीता स्वयं सौम्य रुपा शक्ति तत्व की प्रतीक है दूसरे वे 'राम' नामक मन्त्र की साधना रूपी कवच से आवृत्त है।

'सीता' शब्द की तान्त्रिक व्याख्या इस प्रकार है 'सीता' में तीन अक्षर हैं। इसका प्रथम अक्षर 'स' सादि-विद्या तथा सदा शिव तत्व दोनों का बोध कराता है। सदा शिव तत्व ब्रह्म है—और जिस शक्ति पर अब स्थित है वही सादि विद्या है। सीता प्रणव स्वरूपा है। प्रणव के साथ

सादि विद्या को सम्पुटित करके साधक 'सोऽहं' रूप में शक्ति विद्या की उपासना करते हैं। भगवती त्रिपुरा की अपरा एवं परा विद्या जिसे चिन्तामणि मन्त्र कहा जाता है वह भी इसी 'सोऽहं' मन्त्र में अन्तर्निहित है इस तथ्य का ज्ञान हमें मानस की निम्नलिखित चौपाई के द्वारा होता है।

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीपशिखा सो परम प्रचण्डा ।

आतम अनुभवसुख स्वप्रकाशा ।तव भ्रम भूल भेद भ्रम नाशा ।

जो साधक, योगी इसकी उपासना करना चाहते हैं, उनके लिए यह चौपाई परम उपादेय है। तान्त्रिक अपनी साधना का इसे आधार बनाते हैं ।सोऽहं रुपा विद्या दीपशिखा के समान है जिससे ज्ञान ज्योति का प्रबल प्रकाश आत्मा के द्वारा प्राप्त होता है ।आत्मानुभव स्वप्रकाश स्वरूप है जिससे समस्त संसार के अविद्यारूपी भ्रम निर्मूल हो जाते हैं ।

सीता शब्द में सकारोपरि श्रूयमाण ईकार का अर्थ 'विष्णु' है जो समस्त संसार में व्याप्त है। सीता का तकार प्रणव का प्रतीक है, तकार लक्ष्मी का भी प्रतीक है एवं सरस्वती का भी प्रतीक है ।सीता साक्षात् लक्ष्मी भी है, वाणी भी है जिसकी अभिव्यक्ति मानस के उस स्थल पर प्राप्त होती है जब हनुमान रावणादि निशाचरों पर विजय प्राप्त करके माता जानकी को समाचार सुनाते हैं :—

"सब विधि कुशल कोशलाधीशा । मातुसमर जीतेउ दशशीशा ।" (1)

इसे सुनकर सीता कहती है :—

"अति हर्ष मन तनु पुलक लोचन सजल पुनि पुनि कह रमा ।"

का देउं तोहि त्रैलोक महुं कपि किमपि नहीं बानी समा ।।" (2)

के द्वारा सीता लक्ष्मी एवं सरस्वती का विराट रूप ब्रह्म है। इसी विराट रूप ब्रह्म का प्रतीक तकार है जिसके समक्ष नत मस्तक होकर समस्त प्राणी भव सागर को पार करते हैं ।मानस में अन्य स्थलों पर भी गोस्वामी जी ने 'सीता' को लक्ष्मी का प्रतीक बताया है, देखें :—

लंका काण्ड में 'छबि धाम नमामि रमा सहितं' तथा 'सुख मन्दिर सुन्दर श्री रमनं' इत्यादि वाक्यों में लक्ष्मी की ही अभिव्यक्ति है ।

परात्पर ब्रह्म के रूप में राम और उनकी विशिष्ट शक्ति सीता तथा परमेश्वर के रूप में शिव तथा उनके साथ महाशक्ति के रूप में जगदम्बा पार्वती दोनों में तादात्म्य है ।यहां जगदम्बा सीता निज इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति से अव्यक्त एवं व्यक्त दोनों ही रूपों में अपना रूप प्रकट करती है।

---

(1) लंकाकाण्ड

(2) लंकाकाण्ड

रामचरितमानस में शक्ति तत्व तथा विद्या तत्व दोनों का रहस्य 'सीय राम मय सब जग जानी तथा विद्या तत्व का रहस्य —

'राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार ।

तुलसी भीतर बाहेरहुं जौ चाहसि उजियार ॥

राम नाम के मन्त्र का जाप करने से समस्त अज्ञान्धकार नष्ट हो जाते हैं ।'जहं चितवहिं तहं प्रभु आसीना ..... इत्यादि के द्वारा भी विद्या तत्व के रहस्य की विशद व्याख्या की गई है । तान्त्रिकों के रहस्यात्मक तथ्यों का साक्षात्कार इन दोनों तत्वों के बिना असम्भव है । पार्वती को राम का अनेक रूपों में दिखना, अनेक देवी देवताओं को भी अन्यानेक रूप में देखना ..... इत्यादि तान्त्रिक-साधना के बिना असम्भव है ।

हनुमान पर्वत उठाकर आकाश मार्ग से अयोध्या के ऊपर से जा रहे थे भरत ने उन्हें विशल रूप में देखा—निशाचर समझ बिना फर का बाण मारा। हनुमान मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। तन्द्रा के टूटने पर लक्ष्मण के शक्ति लगने की बात जानकर भरत ने कहा—हे हनुमान तुम मेरे बाण पर बैठ जाओं मैं तुम्हें कृपा के धाम राम के पास तुरन्त पहुंचा दूंगा क्योंकि जाने में देर होने पर काम बिगड़ जाएगा। इस प्रकार हनुमान तथा भरत दोनों का ही तन्त्र साधक होना सिद्ध होता है।

कुम्भकरण का अत्यन्त गहरी नींद में सोना (6 माह तक) यह भी तान्त्रिक साधना से ही सम्भव है। रावण ने उसे युद्ध करने के लिए जगाया, जागकर मदिरा के अनेकों घड़े, भैंसे इत्यादि मंगवाए गए। कुम्भकरण द्वारा की गई तान्त्रिक साधना का ही परिणाम था वह कोटि-कोटि बन्दरों को टिड्डियों की तरह खा गया। इसी प्रकार मेद्यनाद के युद्ध के प्रसंग में भी अनेक तान्त्रिक रहस्य छिपे पड़े हैं। 'कूदे जुगल प्रयास बिनु' अंगद तथा हनुमान का बिना साधना, परिश्रम करके भी परिश्रम रहित हो जाना, बिना तन्त्र साधना के असम्भव है। इससे सिद्ध होता है अंगद एवं हनुमान दोनों ही तान्त्रिक साधना के विशेषज्ञ थे। सम्पूर्ण लंका काण्ड में तान्त्रिक रहस्यों का अम्बार लगा है। यदि कोई तान्त्रिक साधक—इन रहस्यों को समझकर उनकी उपासना करे तो उन्हें अनेक सिद्धियां सिद्ध हो सकती हैं। यह मेरा विश्वास है। उपर्युक्त विषय में शोध कार्यों का अभाव है। अतः इस कार्य के लिए कोई साधक—अगर साधना करता है तो साहित्यिक एवं मानव जगत के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

सी/डी-30 पुराना कवि नगर, गाजियाबाद-201001

औद्योगिक उदारीकरण—दशा और दिशा

—डॉ कमलेश रानी अग्रवाल

यों तो पुरातनकाल से व्यापार देश की सीमाओं को लाघंकर सुदूर देशों के साथ किया जाता रहा है। वर्तमान वैश्वीकरण के समय में व्यवसाय के माध्यम से देशों को निकट आने का अवसर मिल रहा है। व्यवसाय तथा उद्योगों द्वारा देशों में स्वाभाविक रूप से सहयोग और समन्वय स्थापित होता है जिसका लाभ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दृष्टिगोचर होता है। भारत में औद्योगिक उदारीकरण की नीति को इसी विचार से व्यापक परिपेक्ष्य में अपनाया गया है।

उपभोक्ताओं के लिए होने वाली वस्तुओं की आपूर्ति बहुत कुछ उद्योगों पर निर्भर करती है। जैसे-जैसे उद्योगों का विकास होता है, लोगों के रहन-सहन का स्तर सुधरता जाता है। अनुकूल औद्योगिकरण से रोजगार के अवसर बढ़ते हैं तथा राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होती है। सरकार द्वारा उद्योगों को दी जाने वाली छूटों से जहां उद्योगों का तीव्र गति से विकास होता है, वहीं उपभोक्ताओं को सस्ती और अच्छी वस्तुएं समुचित मात्रा में उपलब्ध होती हैं। मांगपूर्ति में सन्तुलन स्थापित होता है।

आज औद्योगिकरण प्रगति का पर्याय बन गया है। विकासशील देश के विकास में औद्योगीकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने आर्थिक संदर्भ में औद्योगीकरण को सर्वोच्च स्थान देते हुए कहा था कि "सभी राष्ट्र जिस देवता की पूजा करते हैं, वह है औद्योगीकरण देवता, विशाल उत्पाद और प्राकृतिक शक्तियों व संसाधनों के लाभप्रद उपयोग का देवता।" औद्यौगीकरण एक ऐसा आन्दोलन है जिसके द्वारा अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों की गरीबी, बेरोजगारी, असुरक्षा और पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है। औद्योगीकरण निर्बल देशों के आर्थिक जीवन के लिए संजीवनी है।

औद्योगिक नीति औद्योगिक प्रगति का दर्शन है। किसी भी राष्ट्र के समुचित औद्योगिक विकास के लिए सुनिश्चित, सुनियोजित और स्पष्ट औद्यौगिक नीति आवश्यक होती है। यह नीति ही उद्योगों के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। राजकीय सिद्धान्त, नियम और विचार समाहित रहते हैं। नियोजित अर्थव्यवस्था वाले भारत जैसे विकासशील देश में औद्योगिक नीति की अधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का सीमित पूंजी और विशाल मानवीय साधन द्वारा अधिकतम विदोहन के लिए व्यापक और प्रभावी औद्योगिक नीति जरूरी है।

औद्योगिक नीति के माध्यम से देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में उपयोगी समन्वय स्थापित किया जा सकता है। औद्योगिक नीति ही आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण पर अंकुश लगाकर और श्रमिकों को प्रबन्ध में समुचित हिस्सा दिलाने में कारगर

सिद्ध होती है। देश में सन्तुलित औद्योगिक विकास भी एक अच्छी उन्नतशील औद्योगिक नीति पर निर्भर करता है। आवश्यक वस्तुओं के लिए विदेशों पर निर्भरता कम कराने में भी औद्योगिक नीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। आधुनिक समय में औद्योगिक नीति आर्थिक विकास के लिए सुदृढ आधार का निर्माण करने का महत्वपूर्ण उपकरण है।

स्वतन्त्रता से पूर्व शासन द्वारा भारत के औद्योगिक विकास पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया। ब्रिटिश शासकों की शासन नीति ब्रिटेन के हितों तक सीमित थी। इसलिए, उस काल में भारत में कोई औद्योगिक नीति नहीं बनाई गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के तीव्र आर्थिक विकास के उद्देश्य से उद्योगों के विकास की नीति को अपनाया गया। इस उद्देश्य से 6 अप्रैल, 1948 को प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा की गई जिसको प्रभावी बनाने के लिए आवश्यकतानुसार 1956, 1970, 1973, 1977, 1980, 1985, 1990 और 1991 में व्यापक संशोधन किए गए। इन संशोधनों द्वारा औद्योगिक नीति को राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुरूप प्रभावी बनाया गया। वर्तमान औद्योगिक नीति में उदारीकरण की नीति को अपनाया गया जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में अनेक अनुकूल परिवर्तन हुए हैं।

औद्योगिक विकास को सही दिशा में गति देने के लिए सन् 1948 की प्रथम औद्योगिक नीति में समय-समय पर सार्वजनिक क्षेत्र, पूंजी संरचना, रोजगार बाजार, प्रतियोगिता, तकनीकी स्तर, जनसंख्या, लघु कुटीर उद्योग आदि को दृष्टिगत रखते हुए अनेक महत्वपूर्ण संशोधन किए गए। फिर भी देश में औद्योगिक विकास की गति और स्तर आवश्यकता के अनुरूप नहीं बन पाया। इसलिए 24 जुलाई, 1991 को वर्तमान अभिनव औद्योगिक नीति की घोषणा की गई जिसके अन्तर्गत देश के उद्योगों को विश्व बाजार में सफल प्रतियोगी बनाने के उद्देश्य से उद्योगों पर से लाइसेंस व्यवस्था के अनावश्यक प्रतिबन्धों को हटाने तथा उद्योगों की कुशलता बढ़ाने और तकनीकी स्तर ऊंचा करने के प्रावधान किए गए हैं। इस नीति में आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, लघु उद्योगों के विकास आधारभूत संरचना को सुदृढ़ता, निर्यात सम्वर्द्धन, विदेशी विनियोग और तकनीकी सहकार्य, एकाधिकार की समाप्ति तथा श्रमिकों के हितों के संरक्षण पर अधिक जोर दिया गया है।

इसके विविध पक्षों के लाभ के साथ उपभोक्ताओं के लिए बहुआयामी बाजार प्राप्त होगा और उनको जीवन स्तर सुधारने का अवसर मिलेगा। वर्तमान उदार औद्योगिकरण नीति में केवल 18 उद्योगों को छोड़कर सभी उद्योगों के लिए लाइसेसिंग व्यवस्था समाप्त कर दी गई है। ये 18 उद्योग इस प्रकार हैं :—1. कोयला व लिग्नाइट, 2. पैट्रोलियम, 3. डिस्टिलरी, 4. चीनी, 5. पशु चर्बी व तेल, 6. सिगरेट व सिगार, 7. एबेस्टस, 8. प्लाईवुड, 9. कच्चा चमड़ा, 10. टेनरी, 11. मोटर कार, 12. कागज, 13. इलैक्ट्रानिक, 14. औद्योगिक विस्फोटक व माचिस, 15. खतरनाक रसायन, 16. औषधि, 17. मनोरंजक इलैक्ट्रानिक्स वी.सी.आर., कलर टी.वी., टेप रिकार्डर, 18. शुभ वस्तुएं (रेफ्रीजरेटर, वाशिंग मशीन, माइक्रोवेव ओवन, एयर कन्डीशनर) इन वस्तुओं का लघु उद्योगों में उत्पादन करने के लिए लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं है।

14 अप्रैल, 1993 को आर्थिक विषयों की संसदीय समिति ने मोटर कार, शुभ वस्तुओं और कच्चा चमड़ा उद्योग को लाइसेंस से मुक्त रखने का निर्णय लिया। इस निर्णय का मुख्य उद्देश्य इन उद्योगों में विनियोजन को आकर्षित करना है। जीवन स्तर में सुधार के साथ आज कार और शुभ वस्तुएं आवश्यक वस्तुएं बनती जा रही हैं। इन वस्तुओं को खरीदने के लिए बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा पर्याप्त उपभोक्ता ऋण भी सुलभ कराया जा रहा है। इसलिए इन उद्योगों में विकास की पर्याप्त सम्भावनाएं विद्यमान हैं। चमड़े और उससे बने जूते आदि के निर्यात के अच्छे अवसर सुलभ हैं। अत: निर्यात सम्वर्द्धन की दृष्टि से इस उद्योग के स्वतन्त्र विकास के लिए लाइसेंस मुक्ति का प्रावधान किया गया है।

यह विश्वास किया जाता है कि वर्तमान औद्योगिक नीति में लाइसेंसिंग व्यवस्था में दी गई छूट गतिशील लघु एवं मध्यम स्तरीय उद्यमियों को प्रोत्साहित कर देश के आर्थिक विकास में सहायक होगी। आधुनिक तकनीकों के प्रयोग से उत्पादकता बढ़ेगी और प्रतियोगिता में आगे बढ़ने का अवसर मिलेगा। वर्तमान औद्योगिक नीति में औद्योगिक इकाइयों के पंजीकरण से सम्बन्धित विद्यमान सभी योजनाएं समाप्त कर दी गई हैं। अब उद्यमियों को नई परियोजनाओं तथा भारी विस्तार योजनाओं के सम्बन्ध में एक सूचना ज्ञापन मात्र भेजना होगा। इस प्रकार उद्यमियों को पंजीकरण की जटिलताओं से मुक्ति मिल गई है।

विद्यमान औद्योगिक इकाइयों को नई विस्तृत पट्टी (ब्रॉड वैण्डिल) की सुविधा इस नीति के अन्तर्गत दी गई है जिसके अनुसार बिना अतिरिक्त विनियोग के उद्यमी किसी भी वस्तु का उत्पादन कर सकते हैं। विद्यमान इकाइयों के पर्याप्त विस्तार को भी लाइसेंस मुक्त रखा गया है।

इस नीति में भारी पूंजी विनियोग और उच्च स्तरीय तकनीक तथा प्राथमिकता वाले उद्योगों में 51 प्रतिशत तक विदेशी पूंजी विनियोग की छूट दी गई है। इससे भारतीय उद्योगों में आधुनिक तकनीकों का विकास होगा और यहां के उत्पादों को अन्तर्राष्ट्रीय मण्डी में पर्याप्त स्थान मिल सकेगा। आन्तरिक बाजार में भी अच्छी किस्म की पर्याप्त वस्तुएं उपलब्ध हो सकेंगी।

वर्तमान औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या घटाकर 8 कर दी गई है। इसमें 1. रक्षा साज-सामान, 2. परमाणु शक्ति, 3. कोयला व लिग्नाइट, 4. खनिज तेल, 5. लौह, मैगनीज क्रोम अयस्क, जिप्सम, गंधक, स्वर्ण और हीरे का खनन, 6. तांबा, सीसा, जस्ता, टिन, मोलिबिनम और बिलफ्राम का खनन, 7. परमाणु शक्ति के उपयोग खनिज तथा 8. रेल परिवहन। बाद में किए गए संशोधनों के अनुसार खनिज तेल की खोज व शोधन में विनियोग के लिए निजी क्षेत्र को भी छूट दी गई है। विद्युत उत्पादन क्षेत्र में अब देशी और विदेशी दोनों प्रकार के निजी विनियोजकों के लिए खोल दिया गया है।

इस नीति में बड़ी कम्पनियों और औद्योगिक घरानों पर एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (एम.आर.टी.पी. एक्ट) की पूंजी सीमा समाप्त कर दी गई है। अब बड़ी कम्पनियों को नए उपक्रम लगाने उत्पादन क्षमता बढ़ाने, विलीनीकरण करने, विशेष परिस्थितियों में संचालकों को नियुक्त करने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता

नहीं होगी जिन उद्योगों के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य नहीं होगा, उन्हें छोड़कर दस लाख से कम जनसंख्या वाले नगरों में किसी भी उद्योग के लिए औद्योगिक अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होगी। दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में इलैक्ट्रानिक्स और अन्य प्रदूषण रहित उद्योगों को छोड़कर सभी इकाइयां नगर की सीमा से 25 कि.मी. दूर लगेंगी।

औद्योगिक विकास की दृष्टि से क्षेत्रीय असन्तुलन कम करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों में लगने वाले उद्योगों को सरकारी प्रोत्साहन जारी रहेगा। इसमें पर्वतीय पिछड़े क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई है।

इस नीति में नवीन परियोजनाओं के लिए वित्तीय संस्थानों से ऋण लेने की शर्तों में ऋण को पूंजी में परिवर्तित करने की शर्त की अनिवार्य व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है।

इस प्रकार नई उदार औद्योगिक नीति में उद्योगों को प्रदत्त छूटों का लाभ सम्पूर्ण समाज को प्राप्त होगा। देश में औद्योगिक विकास की गति तीव्र होगी। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी। जनता के जीवन स्तर में सुधार होगा।

वर्तमान औद्योगिक नीति को सरकार ने खुली औद्योगिक नीति की संज्ञा दी है। इस नीति ने औद्योगिक विकास के लिए नया धरातल प्रदान किया है। अधिक प्रतिबन्धों से औद्योगिक विकास बाधित होता है। इस उदार औद्योगिक नीति ने मुक्त वातावरण सुलभ कराके उद्योगों को प्रगति की नई उड़ान भरने का अवसर दिया है। फिर भी कुछ विचारक विदेशी पूंजी के अति विनियोजन के प्रति भयभीत हैं। उनके पक्ष में इसका दीर्घकाल में दुष्प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए, उदारता के साथ सावधानी भी आवश्यक है। विदेशी विनियोजन की अधिकता कहीं हमारी अर्थव्यवस्था और बाजार व्यवस्था, समाज व्यवस्था और राज्य व्यवस्था पर दुष्प्रभाव न डाले। औद्योगिक विकास के साथ पर्यावरण और आर्थिक स्वतन्त्रता का भी संरक्षण जरूरी है। तभी औद्योगिक विकास का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो सकता है।

अध्यक्षा, महिला उपभोक्ता परिषद्, "हिमदीप" राधापुरी, हापुड़ (उ.प्र.)

राजभाषा प्रबंध और व्यावसायिक संप्रेषण

—सोम प्रकाश सेठी

भारत सरकार के प्रत्येक कार्यालय में राजभाषा नियम, 1976 के नियम संख्या 12 के अनुसार राजभाषा नीति के अनुपालन का दायित्व यूं तो कार्यालय के प्रशासनिक प्रमुख का है और अनुपालन की कमियों के लिए जवाबदेही भी उन्हीं की होती है परन्तु प्रशासनिक प्रमुख राजभाषा संबंधी अपने इस दायित्व को भली प्रकार से निभा सकें, यह सुनिश्चित करने में हिंदी विभाग के अधिकारियों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। इस भूमिका को निभाने में कोई अधिकारी किस सीमा तक सफल होता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके कार्यालय की कार्य संस्कृति (work culture) कैसी है। क्या वह अपने वरिष्ठ अधिकारियों और कार्यालय के प्रशासनिक प्रमुख से राजभाषा कार्यान्वयन के संबंध में मुक्त रूप से चर्चा कर सकता है? क्या वह राजभाषा के संबंध में प्रबंधन की उपेक्षाओं यदि कोई हैं तो उनकी ओर ध्यान आकर्षक कर सकता है और करने में वह सक्षम है। यदि इस प्रश्न का उत्तर हां है तो राजभाषा कार्यान्वयन में कोई कठिनाई कदाचित नहीं होनी चाहिए। यदि उत्तर नकारात्मक है तो कठिनाइयों की कोई सीमा ही नहीं है।

भारत एक बहुभाषी (Multi Lingual) देश है और संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार की सामासिक संस्कृति (Composite Culture) को बनाए रखने के लिए ही राजभाषा कार्यान्वयन के संदर्भ में सरकार की नीति साम और दाम की रही है—दण्ड और भेद की नहीं। वैसे कुछ सीमा तक दण्ड का प्रावधान भी अब अप्रत्यक्ष रूप से हो चुका है।

तो भी, आज स्वतंत्रता प्राप्ति के 53 वर्ष बाद और हिंदी को राजभाषा घोषित करने के 51 वर्ष बाद भी राजभाषा कार्यान्वयन में अनेक कठिनाइयां हैं जो हम सभी को विदित हैं। इन कठिनाइयों पर विजय कैसे प्राप्त की जाए? कठिनाइयों पर विजय कदाचित प्राप्त की जा सकती है—प्रबंधकीय दृष्टिकोण (MANAGERIAL APPROACH) अपनाकर। और वह प्रबंधकीय दृष्टिकोण है आत्मविश्लेषण जिसे अंग्रेजी की प्रबंधन शब्दावली में Swot Analysis कहा जाता है। Swot से अभिप्राय है (STRENGTHS, WEAKNESS, OPPORTUNITIES, TARGETS) हिंदी में इसे हम आत्म विश्लेषण कह सकते हैं। इसका अर्थ है शक्तियों, कमजोरियों, अवसरों और चुनौतियों की पहचान करना और तदनुसार राजभाषा कार्यान्वयन के उपाय करना।

इस संदर्भ में सबसे अधिक आवश्यकता है कि हम हिंदी कार्यान्वयन से जुड़े सभी अधिकारी अपनी शक्तियों को जानें, उन्हें पहचानें और उनका समुचित उपयोग करें। हमारी ये शक्तियां क्या हैं ? ये शक्तियां दो प्रकार की हैं—एक तो वे जो हमें हिंदी अधिकारी होने के नाते प्राप्त हैं और दूसरी वे जो हमारे व्यक्तित्व में निहित हैं। हिंदी अधिकारी होने के नाते जो शक्तियां

हमें प्राप्त हैं वे संविधान के अध्याय 17 और राजभाषा अधिनियम, राजभाषा नियम, 1976 तथा समय-समय पर भारत सरकार द्वारा जारी किए गए राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी आदेशों में निहित हैं।

जो शक्तियां व्यक्ति सापेक्ष हैं उनकी पहचान के लिए आत्मविश्लेषण आवश्यक हैं। इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि हम सभी अपने आप से कुछ प्रश्न करें। ये प्रश्न निम्नलिखित हो सकते हैं :—

1. क्या हिंदी के कार्य से जुड़े होने में मुझे गर्व का अनुभव होता है ?
2. क्या भारत सरकार की राजभाषा नीति के अन्तर्गत हिंदी के प्रचार एवं प्रसार को मैं एक महत्त्वपूर्ण कार्य मानता हूं ?
3. क्या मैंने सरकार की राजभाषा नीति, सांविधानिक प्रावधानों, राजभाषा अधिनियम की विभिन्न धाराओं, उपधाराओं, राजभाषा नियमों और राजभाषा संबंधी आदेशों का गहन अध्ययन किया है और क्या मुझे उनका पूर्ण ज्ञान है ?
4. क्या उक्त प्रावधानों के विषय के कार्यालय के उच्चाधिकारियों को समय-समय पर मैं अवगत कराता रहता हूं ?
5. क्या मैं कार्यालय की गतिविधियों के बारे में जागरूक हूं और जहां कहीं भी राजभाषा संबंधी प्रावधानों का उल्लंघन होता दिखे, तुरन्त संबद्ध अधिकारियों को सूचित करके उसे न केवल उस समय दूर कराता हूं बल्कि यह आश्वासन लेने में भी सक्षम हूं कि भविष्य में इस प्रकार के उल्लंघन की पुनरावृत्ति नहीं होगी ?
6. क्या पुनरावृत्ति होने पर मैं उच्चत्तर अधिकारियों तथा प्रशासनिक प्रमुख को सूचित करता हूं ?
7. क्या मुझे हिंदी व अंग्रेजी और यथावश्यक प्रादेशिक भाषा का भी अच्छा ज्ञान है ?
8. क्या मुझमें अपनी बात और अपने तर्क से दूसरे अधिकारियों व कर्मचारियों को संतुष्ट करने की क्षमता है ?
9. क्या हिंदी में काम करने के इच्छुक व्यक्तियों की कठिनाइयों को दूर करने/कराने में और उन्हें प्रशिक्षण देने/दिलाने के लिए प्रयास करता हूं ?
10. क्या मैंने हिंदी न जानने वाले व्यक्तियों को हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान दिलाने की व्यवस्था की है ?
11. क्या मैंने कार्यालय में ऐसा वातावरण तैयार करने का प्रयास किया है जिसमें मार्गदर्शन की अपेक्षा तो हिंदी अधिकारी से हो परन्तु अधिकारी/हिंदी कक्ष पर पूर्ण निर्भरता की बात न हो ?

12. क्या लीक से हटकर राजभाषा कार्यान्वयन की दिशा मे कुछ नया करने की क्षमता मुझमें है और क्या इस दिशा में मैंने प्रयास किया है ?

13. क्या मुझमें राजभाषा के मामले में नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता है ?

14. क्या मैं हिंदी में काम करने वालों की स्वयं प्रशंसा करने के साथ-साथ कार्यालय के उच्चाधिकारियों द्वारा भी उनकी प्रशंसा करवाता हूं ?

15. क्या मैं अपने कार्यालय में हिंदी कार्यान्वयन की प्रगति पर निरन्तर नजर रखता हूं और प्रगति को तीव्रतर बनाने के उपाय करता हूं ?

16. क्या स्वयं हिंदी में अपना सम्पूर्ण कार्य करके दूसरों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करता हूं ?

17. क्या मैं वरिष्ठ अधिकारियों से भयग्रस्त रहता हूं और इसी कारण हिंदी कार्यान्वयन संबंधी वे बातें भी उन्हें नहीं बता पाता जो उनके लिए जाननी आवश्यक हैं ?

18. क्या मैं संसदीय राजभाषा समिति के निरीक्षण के दौरे को अपने सिर पर आई एक मुसीबत समझता हूं ?

19. क्या मैं संसदीय राजभाषा समिति द्वारा निरीक्षण के दौरान समिति को दिए गए आश्वासनों तथा समिति की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए निरीक्षणोपरान्त तुरन्त प्रयास आरंभ करता हूं ?

20. क्या मैंने कार्यालय में उपयोग के लिए कुछ सहायक साहित्य तैयार किया है ?

21. क्या मैं हिंदी में कम्प्यूटर के उपयोग की क्षमताओं से अवगत हूं ?

उक्त प्रश्नों से यदि हम सही-सही उत्तर आपसे लें तो प्रत्यके उत्तर जो "हां" में है हमारी शक्ति है और प्रत्येक नकारात्मक उत्तर हमारी कमजोरी है। अपनी शक्तियों और कमजोरियों की पहचान के लिए कार्यान्वयन के लिए यह जरूरी है कि हम न केवल अपनी शक्तियों और कमजोरियों को पहचानें बल्कि यह भी नितान्त आवश्यक है कि हम अपनी शक्तियों को और भी सुदृढ़ करें तथा कमजोरियों को दूर करके उन्हें भी अपनी शक्तियों में परिवर्तित करें। साथ ही अपनी शक्तियों का भरपूर उपयोग करें और आज जो चुनौतियां हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने में सामने आ रही हैं, उन्हें अपनी शक्तियों के प्रयोग के द्वारा दूर करें।

स्वॉट एनालिसिस में अवसरों की भी बात आती है। राजभाषा कार्यान्वयन के लिए अवसरों की कमी नहीं है। केवल आवश्यकता है अवसर की पहचान करने की और चुनौतियों को अवसरों में बदलने की। इस संदर्भ में मुझे एक कहानी याद आती है जो प्रबंध पाठ्यक्रमों में अक्सर सुनाई जाती है। "जूतों का निर्माण करने वाली एक कंपनी ने दो सेल्स मैन रखे। एक सेल्स मैन को किसी एक नगर में जूतों की बिक्री के लिए भेजा गया। वह सेल्स मैन 4-6 दिन बाद वापस आ

गया और उसने कंपनी के मालिकों को बताया कि उस नगर में जूतों की बिक्री नहीं की जा सकती क्योंकि वहां हरेक व्यक्ति नंगे पांव रहता है, एक भी व्यक्ति जूते नहीं पहनता और न ही पहनना चाहता है। तब, कंपनी के मालिक ने दूसरे सेल्स मैन को उसी नगर में भेजा। वह दूसरे दिन ही वापस आ गया। मालिक उसे इतनी जल्दी वापस आता देख कुछ चिन्तित हुआ। परन्तु सेल्स मैन ने आते ही मालिक को सूचित किया "सर"। मुझे उसी नगर में तैनात कर दीजिए। वहां तो जूतों की बिक्री की संभावनाएं असीम हैं। अभी तक सभी नंगे पांव रहते हैं।

हमें भी राजभाषा कार्यान्वयन के संबंध में दूसरे सेल्समैन वाली ही दृष्टिकोण अपनाना होगा। ऐसे सकारात्मक दृष्टिकोण अवसरों की पहचान और अपनी शक्तियों के उपयोग से निश्चय ही हम सभी अपने-अपने कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन में गति ला सकेंगे।

अब जब भारत में उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्र विदेशी कंपनियों के लिए खुल गए हैं और खुली प्रतियोगिता की चुनौतियां सामने हैं, राजभाषा के कार्य से जुड़े अधिकारियों को भी समझना चाहिए कि उनकी नियुक्तियां आदि सरकारी उपक्रमों में अब तक केवल इस कारण थीं कि राजभाषा संबंधी नियमों तथा आदेशों के अनुसार अनेक कार्य हिंदी में होने अपेक्षित थे, और इस दौरान यदि सही प्रयत्नों के अभाव में अथवा अन्य कारणों से इन उपक्रमों में हिंदी का प्रयोग समुचित रूप में नहीं बढ़ पाया और हिंदी के अनुकूल वातावरण नहीं बन पाया तो इसका उत्तरदायित्व मुख्यतया राजभाषा से जुड़े अधिकारियों पर हो जाता है। अब समय आ गया है कि उनकी तंद्रा भंग हो, वे जागें, आंखें खोलें तथा अपने चारों ओर के वातावरण का अध्ययन करें। साथ ही आत्मनिरीक्षण कर समय रहते अपनी कमजोरियों को पहचानें तथा उन्हें उखाड़ फैंकें। निजी क्षेत्र वाले अपने संगठन के हित वाले तत्वों तथा परिस्थितियों को बेहतर पहचानते हैं। राजभाषा अधिकारियों को हिंदी संबंधी कार्यकलापों को अब अधिक तीव्र गति से चलाकर खोए समय की क्षतिपूर्ति करनी होगी तथा तुरन्त अपनी तथा हिंदी भाषा की योग्यता, उपयोगिता तथा अनिवार्यता सिद्ध करनी होगी। इतनी ही नहीं उन्हें दूसरे देशों में भी उचित वातावरण बनाना होगा ताकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पहले से ही न केवल आभास हो बल्कि पूरी तरह विश्वास हो कि भारत में काम करने के लिए उन्हें हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग से ही सफलता और लाभ की प्राप्ति होगी। अत: अपेक्षा यह की जाती है कि प्रबंधन तकनीकों का सही उपयोग कर तथा अपनी निष्ठा, व्यवहार कौशल, संप्रेषण क्षमता तथा परिश्रम से राजभाषा अधिकारी उपक्रमों में हिंदी को ऐसे स्थान पर ले जाएं कि उसे पदच्युत करना संभव ही न हो। उपक्रम के सभी वरिष्ठ प्रबंधकों को भी कायल कर देना होगा कि हिंदी केवल राजभाषा के रूप में नहीं, बल्कि व्यापारिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से भी उत्तम माध्यम है।

अत: राजभाषा अधिकारी को कुशल प्रबंधक और सेल्समैन के साथ-साथ एक धर्म-योद्धा (क्रूसेडर) की भूमिका भी निभानी होगी। उसे अपने कार्यालय के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को राजभाषा हिंदी के समर्थक के रूप में परिवर्तित (कनवर्ट) करना होगा। इस काम में उसे सहज बुद्धि, सूझबूझ और धैर्य का आश्रय लेकर काम करना चाहिए न कि कट्टरपंथी या अत्योत्साही

बनकर। यह सर्वविदित है कि अत्योत्साही या कट्टरपंथी से आमतौर पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है। अत: महत्व इस बात का है कि तर्क, उत्प्रेरण, सौहार्द तथा निष्ठापूर्ण व्यवहार से सभी को प्रभावित कर उनका मन जीता जाए। इस कार्य में प्रगति भी तभी होगी जब सबको साथ लेकर चला जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक कुशल एवं प्रभावी राजभाषा प्रबन्धक अति आवश्यक है। इस क्रम में आइए अब हम राजभाषा प्रबन्धक के अपेक्षित गुणों पर चर्चा करें।

राजभाषा प्रबन्धक के गुण

श्री गौवर्धन ठाकुर ने अपनी पुस्तक **राजभाषा प्रबन्ध** (1993) में राजभाषा प्रबन्धक के 24 गुणों की सूची दी है जैसे, विषय का उच्चस्तरीय ज्ञान, व्यवसाय के प्रति लगाव, सुलझा मस्तिष्क, नेतृत्व क्षमता, कुशल अनुवाद क्षमता आदि। इनमें से कुछ गुण जन्मजात हैं कुछ अभ्यास, अनुभव तथा प्रशिक्षण से विकसित होते हैं। यह सूची इस लेख में दी जा रही है।

देखने में आया है कि जिस विभाग में भी राजभाषा प्रबन्धकों या कार्मिकों के निजी गुणों का बहुत बड़ा हाथ रहा है–कभी उनके गुण उनके मधुर व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होते हैं, कभी राजभाषा के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा या प्रतिबद्धता के रूप में, कभी उनके व्यावसायिक तथा भाषागत ज्ञान की परिपक्वता के, कभी उनके जनसम्पर्क के अद्‌भुत गुणों के रूप में और कभी उनकी प्रबन्ध क्षमता के रूप में। कभी–कभी यह भी देखा गया है कि विभाग के उच्च अधिकारियों तथा सहयोगियों की प्रेरणा से उपलब्ध अनुकूल वातावरण राजभाषा की प्रगति में बहुत अधिक सहायक रहा है। इनमें से जितने अधिक तत्वों का समावेश होगा राजभाषा के प्रयोग की स्थिति उतनी ही अधिक सुनिश्चित होगी।

राजभाषा अधिकारी में एक दक्ष, अनुभवी एवं प्रभावी प्रशासक के समस्त गुणों का होना नितान्त अनिवार्य है। राजभाषा के प्रचार प्रसार तथ प्रगामी प्रयोग में जहां राजभाषा अधिकारी को अपने से उच्च स्तर के अधिकारियों से सम्पर्क करना पड़ता है, वहीं निचले से निचले स्तर के कर्मचारियों से भी जूझना होता है। प्रशासन की अच्छी जानकारी तथा विशेषज्ञता के साथ–साथ समुचित अनुभव अपेक्षित है। राजभाषा अधिकारी एक अनुवादक, एक कार्यकर्त्ता, एक पत्रकार एक शिक्षक एवं एक लेखक की भी भूमिका निभाता है। एक कुशल प्रबंधक में मोटे तौर पर जो विशिष्टताएं आवश्यक है वह हैं–पहल शक्ति, विश्वसनीयता, बुद्धिमता, निर्णयन शक्ति, अच्छा स्वास्थ्य, ईमानदारी, दृढ़ता, सुलझा हुआ प्रशासक, विषय का उच्च स्तरीय ज्ञान, समुचित अनुभव, व्यवसाय के प्रति लगाव, कर्तव्यनिष्ठ, सबल चरित्र, अनुशासन, योजन एवं नेतृत्व क्षमता, धैर्य, आत्मविश्वास परिश्रम एवं व्यवहार कुशलता, इत्यादि–इत्यादि। सभी प्रबंधकों में ये सारे गुण एक साथ विद्यमान हों ऐसा जरूरी नहीं है। चूंकि सभी में ऐसे गुण जन्म से हो ऐसा आवश्यक नहीं है। इसके लिए तो बड़ी मेहनत व कौशल की आवश्यकता होती है। कुछ मनुष्यों में कुछ गुण मूलरूप से व कुछ गुण गौणरूप से उद्भित होते हैं। परन्तु अवश्य ही प्रशिक्षण तथा अभिमुखीकरण (ओरिएंटेशन) द्वारा इनमें से कुछ गुणों को उजागर तथा विकसित किया जा सकता है।

राजभाषा अधिकारी को हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी का भी उच्चस्तरीय ज्ञान आवश्यक है कारण एक तो आम रोजमर्रा के कार्यों में हिंदी से अंग्रेजी तथा अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद का कार्य बिना स्त्रोतभाषा के ज्ञान के संभव ही नहीं है। साथ ही द्विभाषी दौर में अनेक मदों पर कार्य अंग्रेजी और हिंदी में करवाना पड़ता है। अत: विषय अर्थात हिंदी और अंग्रेजी के उच्च स्तरीय ज्ञान का कोई विकल्प नहीं है।

राजभाषा अधिकारियों के अपेक्षित गुण

1. सुलझा हुआ प्रशासक
2. विषय का उच्च स्तरीय ज्ञान और समुचित अनुभव
3. व्यवसाय के प्रति लगाव
4. कर्तव्यनिष्ठा और अनुशासन
5. सबल चरित्र
6. संकल्प
7. कार्य-वैशिष्ट्य की सुस्पष्ट अवधारणा
8. निर्धारित लक्ष्य
9. योजना
10. शक्तियों का प्रत्यायोजन
11. नेतृत्व क्षमता
12. सतर्कता
13. ऊर्जा और साहस
14. धैर्य
15. आत्म विश्वास
16. शक्तियों के व्यवहार में संयम और विवेक
17. स्वाभिमान
18. स्वच्छ छवि
19. परिश्रमी और व्यवहार-कुशल
20. साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रुचि
21. कुशल अनुवादक
22. शिक्षक अनुवादक
23. कुशाग्रबुद्धि और प्रत्युत्पन्नमति
24. उत्कृष्ट व्यक्तित्व

देखने में आया है कि जिस विभाग में भी राजभाषा कार्यान्वयन का कार्य तीव्र गति से बढ़ा है उसमें वहां के राजभाषा प्रबंधकों या कार्मिकों के निजी गुणों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। कभी उनके गुण उनके मधुर व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होते हैं, कभी राजभाषा के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा या प्रतिबद्धता के रूप में भी, कभी उनके व्यावसायिक तथा भाषागत ज्ञान की परिपक्वता के, कभी उनके जनसम्पर्क के अद्‌भुत गुणों के रूप में और कभी उनकी प्रबंध क्षमता के रूप में। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि विभाग के उच्च अधिकारियों तथा सहयोगियों की प्रेरणा से उपलब्ध अनुकूल वातावरण राजभाषा की प्रगति में बहुत अधिक सहायक रहा है। इनमें से जितने अधिक तत्वों का समागम होगा राजभाषा के प्रयोग की स्थिति उतनी ही अधिक सुनिश्चित होगी।

जनसम्पर्क के स्तर पर अन्य गुण जो राजभाषा प्रबंधकों को विशिष्टता प्रदान करता है वह है उनकी भाषण या प्रस्तुतिकरण कला। सही या गलत, विभाग में भी हिंदी अधिकारी को विद्वान माना जाता है या कम से कम यह समझा जाता है कि उसका हिंदी भाषा पर अधिकार है यही गुण विभाग के लोग उसके भाषण में भी देखना चाहते हैं। संतुलित शब्दों में ठीक स्थान पर ही ठीक शब्दों और अभिव्यक्तियों का प्रयोग करते हुए अपनी बात कहना जनसंपर्क और भाषण कला दोनों का गुण है। संगोष्ठियों में वक्ता का परिचय कराना, स्वागत करना, मंच संचालन करना, राजभाषा नीति स्पष्ट करना, अपने कार्यों का विवरण देना, धन्यवाद ज्ञापित करना आदि कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिनका निर्वाह राजभाषा प्रबंधक को आए दिन करते रहना पड़ता है। इनका सतत् अभ्यास कर अगर वह इस क्षेत्र में अपने को निपुण बना लेता है तो राजभाषा प्रबंधक के व्यक्तित्व को उभारने में उसकी यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

राजभाषा प्रभारियों के दायित्व

राजभाषा अधिकारी से निम्नलिखित कार्य अपेक्षित हैं, चाहे वह अधिकारी मंत्रालय/विभाग में कार्यरत हों, चाहे सम्बद्ध/अधीनस्थ कार्यालय में या सार्वजनिक निगम उपक्रम/बैंक में :

1. कार्यालय में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहित करना तथा बढ़ावा देना।
2. मूल रूप से हिंदी में काम करने के लिए सभी अधिकारियों आदि को प्रेरित करना, उनकी सहायता करना तथा उन्हें हिंदी में काम करने का अभ्यास कराना।
3. हिंदी भाषा, टंकण, आशुलिपि का प्रशिक्षण आयोजित करवाना तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों और अधिकारियों को हिंदी में काम करने में प्रारंभिक सहायता करना।
4. राजभाषा नीति की सूक्ष्म जानकारी सभी अधिकारियों/कर्मचारियों को देना।
5. राजभाषा से संबंधित विभिन्न प्रोत्साहन योजनाओं के बारे में जानकारी देना, इन योजनाओं को सुचारू रूप से लागू करवाना तथा सुनिश्चित करना कि अधिक से अधिक अधिकारी इन योजनाओं का लाभ उठाएं।

6. प्रेरणात्मक गतिविधियां आयोजित करना, जैसे हिंदी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा विविध प्रतियोगिताएं, कवि गोष्ठियां आदि; मौलिक हिंदी लेखन का प्रोत्साहन, हिंदी पुस्तकों की खरीद तथा वितरण में सहायता।

7. राजभाषा विभाग द्वारा परिचालित वार्षिक कार्यक्रम के अनुरूप अपने कार्यालय के लिए वार्षिक कार्य योजना बनाना तथा उसका कार्यान्वयन सुनिश्चित करवाना।

8. राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के बारे में तिमाही प्रगति रिपोर्ट तथा अन्य आंकड़ों का आकलन, विश्लेषण, मूल्यांकन तथा अनुवर्ती कार्रवाई।

9. कार्यालय की राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा अन्य राजभाषा संबंधी बैठकों का आयोजन, कार्यसूची बनाना, रिपोर्ट बनाना आदि।

10. राजभाषा संबंधी कार्यशाला का आयोजन।

11. कार्यालय के विभिन्न अधिकारियों/कर्मचारियों से रचनात्मक सम्पर्क, उन्हें राजभाषा संबंधी जानकारी/सूचनाएं देना।

12. राजभाषा से संबंधित पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन तथा प्रकाशन।

13. अनुवाद तथा पुनरीक्षण।

14. अधीनस्थ कार्यालयों/इकाइयों का राजभाषा से संबंधित निरीक्षण आदि।

15. संसदीय राजभाषा समिति की प्रश्नावली भरने संबंधी पूर्ण जानकारी एकत्र करना तथा प्रश्नावली को सही तथा अच्छे ढंग से भरना।

16. संसदीय राजभाषा समिति के दौरों के दौरान सभी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्थाएं करना।

17. अपने मंत्रालय, राजभाषा विभाग तथा संसदीय राजभाषा समिति के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बना कर रखना तथा उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरना।

अत: आत्मविश्लेषण (Swot) का भरपूर प्रयोग करते हुए सभी राजभाषा अधिकारियों/प्रबन्धकों तथा राजभाषा कार्यान्वयन से जुड़े अन्य सभी अधिकारियों/कर्मचारियों को उपरोक्त सभी गुणों द्वारा अपने दायित्वों का निर्वाह किया जाना चाहिए।

प्रमुख (राजभाषा), आवास एवं नगर विकास निगम, हडको भवन, आईएचसी बिल्डिंग, नई दिल्ली-110003

स्वैच्छिक संगठन : ग्रामीण विकास के सर्वोत्तम अभिकर्ता

—राजन मिश्रा

आज के सन्दर्भ में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका पर पुनः जोर देने की जरूरत है। वास्तव में ये ही संगठन देहातों में घोर गरीबी में पलने वाले लोगों को उबार सकते हैं। योजनाओं के लाभ ग्रहीताओं के साथ सम्पर्क के अभाव में सरकारी योजनाएं कुछ कर सकने में असफल हुई हैं। इसके विपरीत स्वैच्छिक संगठनों ने न केवल योजनाओं का सफल क्रियान्वयन किया है, बल्कि धन की सामयिक वसूली भी सुनिश्चित की है। इनमें समर्पित कार्यकर्ता लगे हैं। वे सहायता राशि के उचित उपयोग के लिए प्रोत्साहन देते हैं तथा ग्रामीणों में कल्याणकारी योजनाओं के बारे में जागरूकता पैदा करते हैं।

पिछले अनेक वर्षों के दौरान नीति निर्धारकों, योजनाकारों तथा क्रियान्वयन करने वालों का ध्यान भारत में ग्रामीण विकास पर गया है। परिणामस्वरूप सरकार ने दुग्धशाला विकास, मत्स्य-पालन, रेशम कीट-पालन, हस्तकला और खादी और ग्रामोद्योग आयोग के माध्यम से ग्रामीण उद्योगीकरण की अनेक योजनाओं का आयोजन किया है और भी योजनाएं जैसे समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर. डी. पी.), स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों का प्रशिक्षण (ट्रायसेम), देहातों में महिलाओं और बच्चों का विकास (डी. डब्ल्यू. सी. आर. ए.) जवाहर रोजगार योजना आदि की अधिसूचना ग्रामीण गरीबी निवारण हेतु की गई है। लेकिन इन कार्यक्रमों में सन्निहित विशेष उद्देश्य पूरे नहीं हो सके क्योंकि आयोजन त्रुटिपूर्ण रहा और क्रियान्वयन अक्षम। इन कार्यों में जनता की सक्रिय भागीदारी पर इधर काफी जोर दिया जा रहा है, क्योंकि विकास कार्य में सरकारी तंत्र की बड़ी भूमिका आशानुरूप परिवर्तन नहीं ला सकी है। प्रो. माहेश्वरी के अनुसार नौकरी पेशा वाली नौकरशाही ही ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों का सूत्रपात और क्रियान्वयन करती है। यह नौकरशाही कुछ गतिविधियों के लिए तो एकदम अयोग्य है और उसे इन कार्यक्रमों को चलाने में असफलता ही हाथ लगी है। अतः ये कार्य स्वैच्छिक अभिकरणों को सौंपा जाना चाहिए, क्योंकि वे नमनीयता, सृजनशीलता, तात्कालिकता और नवीनीकरण आदि प्रदान करते हैं।

कृषि सुधार और ग्रामीण विकास पर खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ. ए. ओ.) के तत्वावधान में जुलाई 1979 में रोम में आयोजित विश्व सम्मेलन की घोषणाओं में यह कहा गया है कि कृषि सुधार और ग्रामीण विकास का उद्देश्य ग्रामीण जीवन में परिवर्तन लाना है और सभी प्रकार की

गतिविधियों और उनके सभी पहलुओं-आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत, पर्यावरणिक एवं मानवीय- को उसी दिशा में अभिमुख किया गया है। सम्मेलन में यह भी कहा गया कि इस रूपान्तरण के लिए जो राष्ट्रीय उद्देश्य और रणनीति बनाई जाए उसे जन भागीदारी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जिसे केवल स्वयंसेवी संगठन ही अंजाम दे सकते हैं।

योजना आयोग ने ठीक ही कहा कि **"उपयुक्त ढंग से संगठित स्वयंसेवी प्रयास, कमजोर और जरूरतमंद लोगों के सहायतार्थ समुदाय में सुलभ सुविधाओं को बढ़ाने में काफी हद तक कारगर हो सकता है"** और ऐसे लोग बेहतर जीवन पा सकते हैं। इसके लिए जरूरी साधन उन करोड़ों लोगों के समय, ऊर्जा और अन्य स्रोतों से प्राप्त होंगे जिनके लिए स्वयंसेवी संगठन रचनात्मक कार्य स्रोतों का आयोजन देश में सुलभ विविध स्थितियों के अनुरूप कर सकते हैं।

इस प्रकार स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर व्यापकत: मान्य हुई है। ये संगठन बहुत हद तक लोगों को सहायता प्रदान करने में सहायक हो सकते हैं ताकि लोग प्रगति के अपने प्रयास चला सकें। ये संगठन लोगों में अवस्थित प्रभविष्णुताओं को उत्तेजित करने और बढ़ाने का काम भी कर सकते हैं; विकास में लोगों की भागीदारी प्रक्रिया का श्रीगणेश कर सकते हैं ; न लाभ पा सकने वाले समूह को सामाजिक न्याय दिला सकते हैं और उनमें समाज में अपने अधिकार और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता पैदा कर सकते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं में प्रगति को बढ़ावा दे सकते हैं।

स्वैच्छिक संगठन व्यक्तियों का ऐसा समूह होता है जिन्होने स्वयं को एक विधि सम्मत निकाय में संगठित कर लिया है ताकि वे संगठित कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक सेवाएं प्रदान कर सकें। **लार्ड बिवरिज** के शब्दों में **"ठीक से कहें तो स्वयंसेवी संगठन ऐसा संगठन होता है जिसका कार्य आरम्भ और संचालन इसके सदस्यों द्वारा बिना बाहरी हस्तक्षेप के होता है, चाहे इसके कार्यकर्ताओं को वेतन दिया जाता हो या नहीं।"** ऐसे संगठनों का एक संगठनात्मक व्यक्तित्व होता है। जैसे अपनी ही पहल करके अथवा बाहर से प्रेरित होकर लोगों के एक समूह ने किया हो ताकि किसी स्थान विशेष में (आंशिक या पूर्णत:) एक आत्मनिर्भर तरीके से गतिविधियां चलाई जा सकें, उनकी जरूरतें पूरी की जा सकें और साथ ही उनकी तथा सार्वजनिक क्षेत्र की प्रसार सेवाओं को एक दूसरे के करीब लाया जा सके ताकि ग्रामीण कमजोर वर्गों के न्यायोचित और प्रभावी विकास को अंजाम दिया जा सके।

शिवरामन समिति ने किसी संगठन के स्वयंसेवी होने के लिए कुछ पूर्वापेक्षाओं का सुझाव दिया है। इन पूर्वापेक्षाओं के अनुसार ऐसा संगठन पंजीकृत संस्था, सहकारी समिति, न्यास या लाभ न कमाने वाली कम्पनी होनी चाहिए, इसकी विधि-विहित प्रबन्ध समिति होनी चाहिए जिसके कार्य निर्धारित होने चाहिएं; उसमें सक्षम कर्मचारी होने चाहिएं, उचित लेखा और संचालन प्रणाली होनी चाहिए और उसके पास क्षेत्र या उसके लोगों की सेवा की विस्तृत योजना होनी चाहिए।

1464 HA/2001—5A

उत्प्रेरक अभिकरण: स्वैच्छिक संगठनों को ग्रामीण विकास के लिए उत्प्रेरक अभिकर्ता के बतौर माना जाता है, क्योंकि ये आमतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों को विकसित करने तथा खास करके ग्रामीण गरीबों के विकास में विविध भूमिकाएं अदा करते हैं। स्वैच्छिक संगठनों को गरीबों का दुख-दर्द कम करने के काम में सरकारी अभिकरणों की अपेक्षा बेहतर माना जाता है क्योंकि उनके कार्यकर्ता अधिक ईमानदारी से समर्पित भाव से अपना काम करते हैं; वे गरीब लोगों के साथ सरकारी लोगों की अपेक्षा बेहतर सम्बन्ध स्थापित कर पाते हैं और कठोर नौकरशाही नियमों/उपनियमों और पद्धतियों से वे बधे नहीं होते हैं। वे महत्तर नमनीयता के साथ अपनी गतिविधियों का शीघ्रता से समंजन कर लेते हैं एवं लगातार अपने अनुभवों से सीखते चलते हैं। इस प्रकार यह गरीबों और दलितों के विचारार्थ एक उच्च स्तर का अभिकरण होता है।

आमतौर पर ग्रामीण विकास कार्यक्रम असफल इसलिए होता है, क्योंकि लक्षित समूहों अर्थात् छोटे किसान एवं सीमान्त किसानों, कृषि और गैर-कृषि मजदूरों, ग्रामीण कारीगरों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के बारे में उनके पास जानकारी नहीं होती है। इसके अलावा उनके लाभार्थ जो योजनाएं एवं सुविधाएं हैं उनके बारे में उन्हें पूरी तरह से जानकारी नहीं होती है। छठी योजना में ठीक ही कहा गया है कि "पिछले अनुभव यह दर्शाते हैं कि गरीबों के लिए बनाए गए कार्यक्रमों में से अधिकतर उन तक अंशत: भी नहीं पहुंच पाते, क्योंकि उन्हें जो अवसर प्रदान किए जाते हैं उनके बारे में लाभार्थियों में जागरूकता का अभाव होता है" यह जोर देने का वह क्षेत्र है जहां स्वैच्छिक संगठन इन कार्यक्रमों में भाग लेने वालों में जागरूकता पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। इन लोगों को विशिष्ट योजनाओं के बारे में उत्सुक करने और ठीक तरह से उनको मार्गदर्शन देने में ये संगठन निजी सम्पर्क और अधिक लोगों से मिलकर काफी काम कर सकते हैं। इसके अलावा स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण गरीबों को ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के लिए संगठित भी कर सकते हैं। वे प्रत्येक योजना, उसके उद्देश्य, उपेक्षित लाभ, कार्य-प्रणाली आदि के बारे में बेहतर ढंग से समझा सकते हैं। इस प्रकार भाग लेने वालों द्वारा उनकी क्षमता के अनुसार कुछ योजनाएं चुनने में यह संगठन मदद कर सकते हैं, क्योंकि बाहर से लाई गई योजना कोई अच्छा परिणाम नहीं ला सकती है।

लाभार्थियों का चुनाव : ऐसे संगठन विविध योजनाओं के लिए लाभार्थियों की ठीक पहचान और उनके चयन में महत्वपूर्ण ढंग से योगदान कर सकते हैं। हम लाभार्थियों की पहचान और चयन के बारे में चल रहे पक्षपातपूर्ण उपागम से छुटकारा पा सकते हैं। असरकारी संगठन ग्रामीणों की औपचारिक बैठकें करके केवल वास्तविक और जरूरतमंद परिवारों का ही चयन करके उन्हे काम में लगा सकते हैं। चयन के बाद कुछ अभिकरणों के माध्यम से लाभार्थी बैंक से वित्तीय सहायता मांगते हैं। कभी-कभी परिसम्पत्तियां खरीदने के कारण ऋण की अदायगी करने में अनावश्यक देरी होती है। स्वैच्छिक संगठन ऐसे मामले में आगे आकर अदायगी करवाने में सहायक हो सकते हैं जिनमें बहुधा कोई कटौती नहीं होगी। दूसरी मुसीबत निहित स्वार्थियों का

1464 HA/2001—5B

है जो पशुओं की खरीद को प्रभावित करते हैं जिसके लिए ऋण प्रदान किया जाता है। ऐसा बहुधा देखा गया है कि 3,000 रुपए की भैंस का मूक ऋणी से 4,000 रुपये ले लिया जाता है जो कि आधिकारिक खरीद दल और पशु-स्वामी की मिलीभगत से होता है और 1,000 रुपये कानून के पहरेदारों द्वारा हथिया लिया जाता है। इस प्रकार समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम का पैसा बह जाता है (जो बिचौलियों की थैली में जाने वाले पैसे के बराबर का होता है)। इस प्रकार का गलत धन-प्रवाह केवल स्वैच्छिक प्रयास से ही रूक सकता है।

ये संगठन ग्रामीण गरीबों के पेशागत कौशल बढ़ाने तथा उनमें प्रबन्धकीय विशेषज्ञता विकसित करने में भी सहायक हो सकते हैं। इससे लाभार्थियों में आत्मविश्वास काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है। अभी बहुत सारी समस्याएं अधिकारी वर्ग के साथ बैठकर बातचीत करके हल की जा सकती हैं। यह तभी होगा जब अधिकारियों को ऐसा करने के लिए शिक्षित किया जाए और तदनुरूप योजनाएं बनाई जाएं।

इन संगठनों का उपयोग स्थानीय वित्तीय संसाधन बटोरने के लिए भी किया जा सकता है ताकि संस्था को आत्मनिर्भर बनाया जा सके।

यह एक वास्तविकता है कि कुछ लाभार्थी ईमानदार नहीं हैं और वे बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋण का दुरुपयोग करते हैं। इससे वसूली में समस्याएं पैदा होती हें। स्वैच्छिक संगठन ऐसे लाभार्थियों को प्रभावी और उत्तम उपयोग के लिए ऋणों का इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित कर मार्गदर्शक और मित्र की भूमिका निभा सकते हैं और उनके साथ बेहतर संपर्क साधकर गलत उपयोग को नियंत्रित कर सकते हैं तथा वसूली की स्थिति सुधार सकते हैं।

विविध कार्यक्रमों के निर्देशन और मूल्यांकन की दिशा में भी स्वैच्छिक संगठन काफी बड़ी भूमिका निभा सकते हैं, क्योंकि वे इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से संबंधित अपेक्षित सूचना और आंकड़ा इकट्ठा करके सरकारी तंत्र को आवश्यक क्षेत्रीय सूचना देने की प्रक्रिया में सहायक हो सकते हैं। उनके द्वारा दी गई सूचनाओं को नीति-निर्माता काफी उपयोगी मानते हैं। ऐसे संगठन ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों पर सक्रिय तौर पर शोध कार्य कर सकते हैं ताकि ग्रामीण जन समुदाय की हालत सुधारी जा सके। यह संगठन सतत प्रयास, बुद्धि चातुरी और लोचपूर्ण नवीन कार्य करके ग्रामीण विकास को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं।

अत: हम यह कह सकते हैं कि स्वैच्छिक संगठन गरीबी निवारण में एवं कई अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। अन्य कार्यक्रमों में ग्रामीण साक्षरता, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, परती धरती विकास, आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग, गैर पारंपरिक ऊर्जा, साफ-सफाई आदि का समावेश हो सकता है। साथ ही वे ग्रामीण समुदाय को अपने ही विकास में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए संगठित कर सकते हैं, प्रोत्साहित कर सकते हैं और समर्थ बना सकते हैं। इस प्रकार आज स्वैच्छिक संगठन सरकार के अनुकूल झुकाव के कारण गांव के सामाजार्थिक परिवर्तन में एक तंत्र के रूप में उभर रहे हैं।

प्रवक्ता, समाजशास्त्र एम आर के (पी जी) कालेज, फिरोजाबाद द्वारा राहुल बुक डिपो, चांदला, आगरा-7

उत्पादकता में सुधार : बदलते परिवेश के साथ

—धृति नेमा

अस्सी के दशक तक भारत में बैंक निर्धारित ब्याज दरों पर ऋण प्रदान करने तथा अन्य सांविधिक अपेक्षाओं को पूरा करने जैसी विशिष्टताओं से युक्त एक संकुचित वातावरण में कार्य कर रहे थे। परन्तु नब्बे के दशक के प्रारम्भ में ही आंतरिक एवं वैश्विक स्तर की बाहरी चुनौतियों के मद्देनजर बैंकिग क्षेत्र में सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इस सुधारात्मक प्रक्रिया का उद्देश्य जहां एक और वित्तीय व्यवस्था में उत्पादकता एवं कार्यक्षमता को बढ़ाना था वहीं दूसरी ओर विकसित वित्तीय बाजारों में स्वीकृत मानकों को अपनाते हुए बैंकों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक बनाना भी था।

बैंकों के बीच प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने के लिए दो प्रमुख उपाय किए गए। पहला सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को जनता से निधि एकत्र करने हेतु बाजार में जाने की अनुमति प्रदान की वहीं दूसरी ओर निजी क्षेत्र के नए बैंकों का प्रवेश हुआ, यहीं नहीं विदेशी बैंकों के प्रवेश के लिए भी उदार नीति अपनाई गई। बैंकों को आंतरिक रूप से मजबूती प्रदान करने के लिए आय पहचान पूंजी पर्याप्तता उपाय, उत्पादकता, परिचालात्मक गुणवत्ता, परसम्पत्ति गुणवत्ता तथा प्रावधानीकरण व एनपीए वसूली सम्बन्धी अपेक्षाओं के संबंध में विवेकपूर्ण मानकों को लागू किया गया।

इन उपायों के अपनाने से प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का निर्माण हुआ। फलस्वरूप उसमें बाजार की आवश्यकताओं के प्रत्युत्तर के लिए सही व त्वरित सूचना अनिवार्य बन गई। बैंकों ने भी अपनी परिचालन क्षमता में सुधार लाने तथा ग्राहकों को उच्चतम संतोषजनक सेवा प्रदान करने हेतु नए मार्ग तलाशने शुरू किए। उच्च प्रौद्योगिकी के माध्यम से कुछ बैंकों ने अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए एटीएम सुविधा, टेली बैंकिंग, वीक लेप बैंकिंग आदि सुविधाएं प्रारम्भ की।

इन्फोरमेशन रिसर्च सर्वे से ज्ञात हुआ है कि कर्मचारी की उत्पादकता उच्च प्रौद्योगिकी से बढ़ी है। अपने सर्वे में यह भी बताया है कि प्रबन्धन के दृष्टि कोण का मुख्य मुद्दा उत्पादकता ही होना चाहिए ताकि यह ज्ञात हो सके कि रिटर्न ऑन टेक्नालॉजी इन्वेस्टमेन्ट कितना हुआ है। किसी भी संस्थान में हाईटेक तकनीकी के छः महीने बाद उत्पादकता में सुधार देखा जा सकता है।

समय-समय पर किए सर्वे से ज्ञात हुआ है कि प्रबन्धन नीति और तकनीकी के संयुक्त विकास से कर्मचारी की उत्पादन क्षमता में सुधार होता है क्योंकि प्रबन्धन नीति जहां उत्पादकता में 40 प्रतिशत वृद्धि करती है वहीं तकनीकी का इसमें समावेश 80 प्रतिशत तक वृद्धि करता है। पर यह तभी संभव है जब तकनीकी या हाइटेक का सही तरीके से उपयोग किया जाए।

उत्पादकता क्या है ?

उत्पादकता उत्पादन प्रणाली की कार्यक्षमता को मापती है। बैंकिंग उद्योग में बैंकों द्वारा दी जाने वाली सेवाएं ही प्रमुख उत्पाद है। अत: इन सेवाओं को उच्चतम स्तर पर बनाए रखने के लिए बहुत से इनपुट की आवश्यकता होती है तभी जाकर आउटपुट अच्छा निकलता है

$$\text{उत्पादकता (P)} \frac{\text{आउटपुट}}{\text{इनपुट}} = \frac{\text{सेवाएं}}{(\text{श्रम} + \text{पूंजी} + \text{तकनीक})}$$

बैंकिंग उद्योग में इसे निम्नांकित सूत्र द्वारा आंका जाता है अर्थात् कितने कर्मचारी सेवाओं द्वारा कितनी जमाएं व कितनी अग्रिम करते हैं। प्रति कर्मचारी के व्यवसाय को कुल जमा + कुल अग्रिम से अनुपात ही उत्पादकता तय करता है।

$$\frac{\text{कुल जमा + कुल अग्रिम}}{\text{कुल एम्पलाई की संख्या}}$$

(पार्ट टाइम कर्मचारी को छोड़कर)

उत्पादकता की आवश्यकता क्यों ?

प्रतिस्पर्धा के युग में जबकि सभी के पास समान उत्पाद तैयार है तब आवश्यकता होती है कि उत्पादकता को भी लाभप्रदता की तरह उच्चतम स्तर पर बनाए रखने के लिए आवश्यक सुधार किए जाएं क्योंकि उत्पादकता सभी प्रकार के क्षय या बरबादी के निराकरण का दूसरा नाम है।

उत्पादकता का महत्व :

उत्पादकता प्रगति का दूसरा नाम है। संस्थान की समृद्धि विकास प्रगति व कर्मचारियों की योग्यताओं को बढ़ाने के लिए ऊंचा उठाने के लिए उत्पादकता को बढ़ाना ही एकमात्र विकल्प है क्योंकि उत्पादकता में किसी भी प्रकार की बरबादी का कोई स्थान नहीं होता।

बैंकिंग उद्योग में हम उत्पादकता के उद्देश्यों को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। (व्यक्ति — मशीन — वातावरणीय प्रणाली)

1. सभी प्रकार के क्षयों का निवारण।
2. लागतों का हटाना।
3. अनुपात्दकीय खर्चों का कम करना।
4. कार्यशील परिस्थितियों में सुधार।
5. त्वरित गति से व अच्छी सर्विसेज देना ताकि ज्यादा बिजनेस प्राप्त हो सके।

6. आय के रिसाव को रोकना।

7. एन.पी.ए. को कम करना।

उत्पादकता में सुधार के लिए पहले यह जानना जरुरी है कि उत्पादकता को प्रभावित करने वाले घटक कौन-कौन से हैं :—

1. मानवीय घटक 2. तकनीकी घटक

अतः सर्वप्रथम हम मानवीय घटक को लेंगे और देखेंगे कि उसमें किस तरह सुधार किया जा सकता है जिससे उत्पादकता को बढ़ाया जा सके।

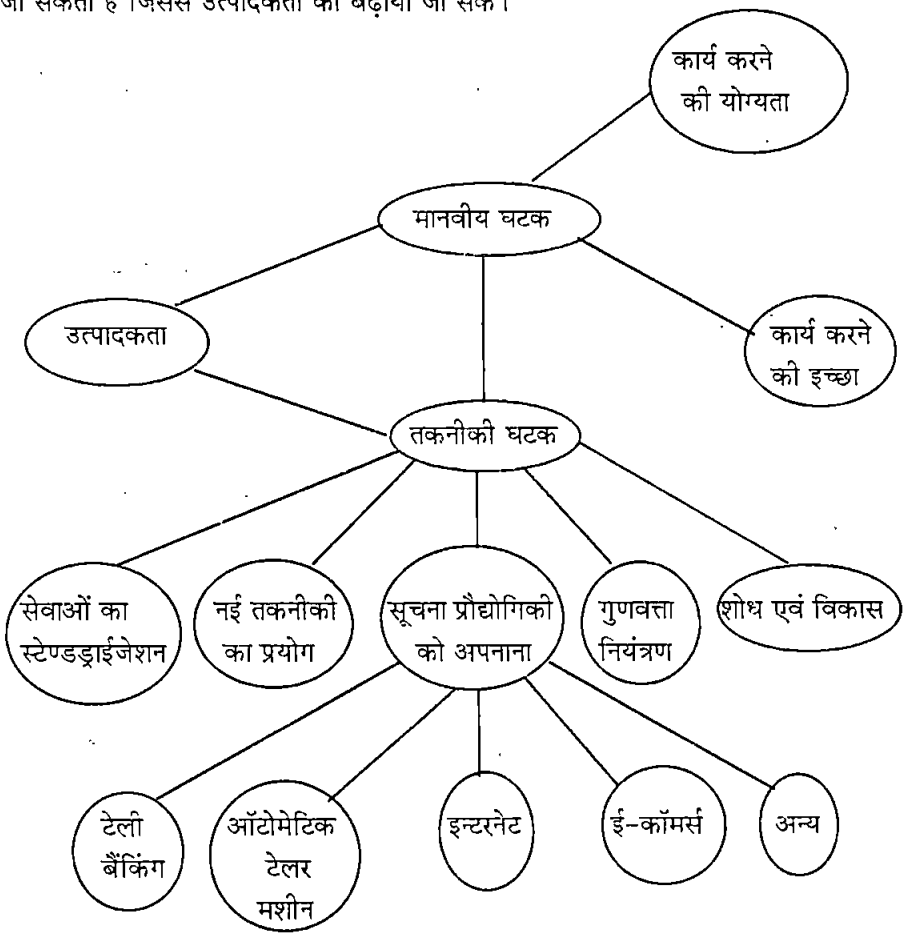

मानवीय घटक

मानवीय संसाधनों का प्रबन्ध सर्वाधिक कठिन एवं चुनौती भरा है। इस संसाधन की प्रत्येक इकाई अद्‌भुत है और इसके लिए मानवीय व्यवहार अपेक्षित है। इस कार्य में प्रबुद्ध तथा प्रभावी श्रम शक्ति का विकास तथा अनुरक्षणी मानवीय व्यवहार में छिपे-विभिन्न प्रेरक तत्वों की गहन सूझ-बूझ की अपेक्षा होती है। कर्मचारियों के बीच अभिप्रेरणा, मनोबल तथा अनुशासन सुधार हेतु प्रबन्धकों को आगे आना चाहिए।

अभिप्रेरणा :

अभिप्रेरणा से किसी आवंटित कार्य को करने के लिए इच्छा का ज्ञान होता है। यह अपेक्षित लक्ष्यों की अभिप्राप्ति की ओर कठिन परिश्रम हेतु लोगों को प्रेरित करने की प्रक्रिया है। अभिप्रेरणा कार्य संतुष्टि से उत्पन्न होती है।

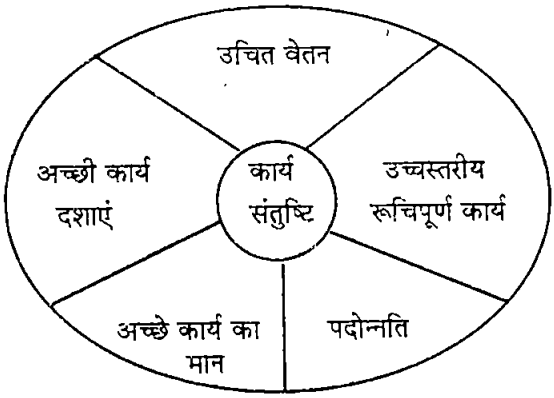

अत: यदि हमें उत्पादकता में सुधार लाना होगा तो देखना होगा कि कर्मचारियों को कार्य संतुष्टि है या नहीं।

पुरस्कृत या दण्डित करना :

इसके तहत कर्मचारियों को उनकी निष्पादन क्षमता, योग्यता, आदि के लिए पुरस्कृत किया जाना चाहिए। इसी तरह चेतावनी, धमकी या निष्पादन आदि उनके द्वारा निकृष्ट निष्पादन व नियमों की अवहेलना के लिए दिए जाते हैं।

पारिवारिक विचारधारा :

कर्मचारियों को परिवार का सदस्य माना जाता है और प्रबन्ध इसी मान्यता के आधार पर उनकी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं का ध्यान रखता है। सामूहिक बीमा, पैंशन योजना, अनुदान प्राप्ति शिक्षा बच्चों के लिए स्कॉलरशिप, मनोरंजन कार्यक्रम आज के प्रतिस्पर्धात्मक व चुनौतीपूर्ण

समय में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की नीति अपनाई जाती है। जहां प्रबन्धक एक स्वामी की भांति न रहकर एक सहायक, मार्गदर्शक या परामर्शदाता की भूमिका निभाता है।

इसके अतिरिक्त कार्य वर्गों को समस्या समाधान तथा निर्णय की भूमिका सौंप दी जाती है। प्रबन्ध अपने अधीनस्थों को समस्या विश्लेषण तथा समाधान में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

अभिप्रेरणा द्वारा उत्पादक में सुधार :

उत्पादकता = योग्यता × अभिप्रेरणा × तकनीक

आधुनिक तकनीकी योग्यता तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में कर्मचारियों की योग्यता तथा सामर्थ्य में आशातीत वृद्धि की है। अभिप्रेरित कर्मचारी अधिक अच्छी गुणवत्ता वाली सेवाएं प्रदान करते हैं व समय की कम से कम बरबादी करते हैं।

मनोबल :

मनोबल उस कुल संतुष्टि को इंगित करता है जो कोई व्यक्ति 1—अपने काम से 2—अपने कार्य दल से 3—अपने स्वामी से 4—अपने संगठन से व 5—अपने सामान्य परिवेश से पाता है। यह कर्मचारियों की सामान्य खुशहाली, संतुष्टि एवं प्रसन्नता से झलकता है।

जब कर्मचारी मतिभ्रमों, निराशाओं, असंतुष्टियों, सन्तापों से दग्ध होते हैं तो उनका मनोबल निम्न रहता है तथा वे कोई भी कारण पैदा करके उत्पादकता का मार्ग शिथिल करने का प्रयास करेंगे।

उच्च मनोबल व उत्पादकता में सहसम्बन्ध है परन्तु अपवाद जनक परिस्थितियों में ऊंचे मनोबल के पश्चात् उत्पादकता नीची रहती है। कारण कर्मचारियों में निपुणता का अभाव व नई तकनीकी का अभाव या अज्ञानता का होना होता है। इसी तरह निम्न मनोबल में यदि उच्च उत्पादकता हो भी गई तो स्थिति काफी गम्भीर होती है।

	उच्च मनोबल	निम्न मनोबल
उच्च मनोबल	उच्च उत्पादकता	उच्च उत्पादकता
निम्न मनोबल	उच्च मनोबल निम्न उत्पादकता	निम्न मनोबल निम्न उत्पादकता

मनोबल—निर्माण सतत प्रक्रिया है । अत: कर्मचारियों के मनोबल के सृजन हेतु निम्न कदम उठाए जा सकते हैं।

हितों में एकता

नेतृत्व के प्रति विश्वास

प्रबन्धकीय ढांचा

अनुकूल वातावरण

आवश्यकता संतुष्टि

मानवीय संबंध पहुंच

स्वस्थ पदोन्नति नीतियां

शिकायत समाधान

उचित चयन

निरीक्षण की गुणवत्ता

विभिन्न प्रेरणाएं

अनुशासन :

जब किसी उद्योग में या संस्थान में कर्मचारी नियमों का पालन करते हैं, तब वह संस्थान अनुशासित माना जाता है। इसीलिए, अनुशासन बनाए रखने से उत्पादकता पर सीधे प्रभाव पड़ता है। अत: प्रबन्धन को चाहिए कि वे अपनी नीतियों में इस बात का ध्यान रखें कि नियमों को किस सीमा तक लागू करें तथा अनुशासन संबंधी नीतियां, लागू करने में निरन्तर सहन शक्ति का क्षेत्र सभी के लिए समान बनाए रखें।

गुणवत्ता :

गुणवत्ता उत्पादकता सुधार के क्षेत्र में नई तकनीक है। गुणवत्ताचक्र यह कर्मचारियों का छोटा सा वर्ग है जो नियंत्रित रूप से मिल बैठकर समस्याओं पर विचार करता है। समस्या के कारणों को खोजता है, समाधान सुझाए जाते हैं तथा सुधारात्मक कदम उठाए जाते हैं।

इसमें मूलत: निम्न विषयों का समावेश होता है—

समस्या का परिचय — समस्या पर विचार — कारणों की समीक्षा — समाधान का विकास एवं आवश्यक कार्यवाही के लिए प्रबन्ध के समक्ष समाधान प्रस्तुत करना।

इस प्रकार गुणवत्ता चक्र कार्यक्रम का उद्देश्य—

1. अभिप्रेरण

2. उत्पादकता में सुधार

3. सेवा उत्पाद में गुणवत्ता आदि को बढ़ाना है।

इसी गुणवत्ता के आधार पर आई.एस.ओ.—2000, 2001, 2002 प्रदान किए जाते हैं। अभी तक हम उत्पादकता को उसके उच्चतम स्तर पर रखने के लिए गैर तकनीकी विधियां अपनाते रहे परन्तु अब बैंकों और वित्तीय संस्थाओं ने प्रचुरता के साथ ऐसे उत्पादों और सेवाओं का प्रस्ताव करना आरम्भ कर दिया है जो अब तक वित्तीय क्षेत्र में सुनने में भी नहीं आती थीं। यह कार्य सूचना प्रौद्योगिकी तथा बैंकिंग सेवाओं के बीच की सहक्रिया के कारण सम्पादित हुआ है। इलैक्ट्रानिक बैंकिंग का निधियों का चैकों/नकदी/सूचनाओं के पारम्परिक साधनों की अपेक्षा इलैक्ट्रोनिक साधनों की सहायता से अंतरण करने का साधन कहा जा सकता है। इलैक्ट्रानिक बैंकिंग के लिए उदाहरण के रूप में एटीएम, आवर्ती, उपादेयता—भुगतानों के संचालन, क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड और स्मार्ट कार्ड भुगतान विक्रय स्थान में अंतरण केन्द्र इंटरनेट बैंकिंग, इलैक्ट्रानिक कामर्स डिजिटल केश आदि शामिल हैं।

प्रौद्योगिकी वित्तीय क्षेत्र में उत्पादकता को बढ़ावा देने में एक उत्प्रेरक के रूप में काम करती है, इससे—

1. भौगोलिक सीमाओं का बंधन टूट जाता है, जिससे व्यवसाय बढ़ाने में मदद मिलती है।
2. तथा कर्मचारी की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है कर्मचारी ज्यादा काम करके देते है उनका आउटपुट अधिक होती है।
3. कर्मचारियों को नई तकनीकी के साथ काम करने में रुचि, अभिज्ञान, उत्साह आदि होता है।

यद्यपि नई तकनीकी को स्थापित करने में खर्च होता है परन्तु रिटर्न आन इनवेस्टमेन्ट अधिक होने से उत्पादकता में बढ़ोतरी ही होती है।

बैंक अब सुपर मार्केटों और शॉपिंग मालों में सुपर शाखाओं को स्थापित करके उभर रही नई प्रौद्योगिकी पर निर्भर रहने लगे हैं। ये बैंक लागतों को यथा साध्य कम रखने तथा बैंकिंग उत्पादों को प्रति व्यक्ति के आधार पर बेचने हेतु इन सुपर मार्केट शाखाओं में स्वयं सेवा इलैक्ट्रानिक सुगम साधनों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

यद्यपि हर टेक्नोलॉजी व सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा उत्पादकता में काफी सुधार हुआ है परन्तु उसे मेक्रोइकानामिक्स व माइक्रोइकानामिक्स द्वारा नहीं मापा जा सकता।

उदाहरण के लिए ऑटोमेटेड टेलर मशीन ने जहां ग्राहक को सुविधाएं प्रदान की हैं वहीं उत्पादकता को भी बढ़ाया है।

एक सर्वे के अनुसार यह अध्ययन किया गया कि सूचना प्रौद्योगिकी का उत्पादकता की वृद्धि में कितना महत्व है—ई कामर्स अभी अपने शुरूआती दौर में है। परन्तु उदारीकरण एवं प्रतिस्पर्धात्मक एवं दौड़भाग पूर्ण जिन्दगी के कारण यह व्यापार बढ़ाने, ग्राहक बढ़ाने, सेवा गुणवत्ता बढ़ाने में सबसे लोकप्रिय साधन में स्थान प्राप्त करेगा। भविष्य में शायद ही कोई ऐसा व्यवसाय या वित्तीय सेवा क्षेत्र बचेगा जिसका अपना वेब-साईट नहीं होगा।

इकरा (साख निर्धारण एजेंसी) ने इन्टरनेट पर अपनी नवीनतम रिपोर्ट में कहा है कि भारत में ई कामर्स का कुल कारोबार वर्ष 2000 के 4 अरब 70 करोड़ रुपये से बढ़कर वर्ष 2005 में 2 खरब 52 अरब हो जाएगा। इससे ही हम अंदाजा लगा सकते हैं कि उत्पादकता में कितना सुधार हुआ है और होगा।

वी.आर.एस. स्कीम :

उद्यमों में आवश्यकता से अधिक संख्या में लोगों के कार्यरत होने से उत्पादकता में कमी महसूस की जाने लगी। तब यह स्कीम निकाली गई। इसके तहत भी बहुत से कर्मचारियों द्वारा अवकाश प्राप्त कर लिए जाने से प्रति कर्मचारी उत्पादकता बढ़ी है। इसके साथ-साथ प्रति व्यक्ति उत्पादकता बढ़ाने के लिए कर्मचारियों के प्रशिक्षण/पुनर्प्रशिक्षण पर भी ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

अनुत्पादकीय खर्च प्रबन्धन :

खर्चों की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली व परम्पराओं का बेहतर प्रबन्ध करके खर्च उत्पादकता को प्राप्त करना, उसे कायम रखना, उसमें बढ़ी हुई गुणात्मक स्थिति प्राप्त करना ही प्राथमिक कार्य है। इससे खर्च उत्पादकता में व्याप्त ऋणात्मक विचलन कम होने लगेंगे और अनुत्पादकीय खर्चों का प्रबन्धन स्वत: ही उस उपलब्ध खर्च उत्पादक कार्यप्रणाली से व्यवहार्य हो सकेगा।

अधिकांश बैंकों ने अपने कार्यकलापों की व्यापक समीक्षा तथा उसकी पुनर्संरचना करने तथा प्रबंधन सूचना पद्धति की समीक्षा करने हेतु कन्सल्टेंसी सर्विसेज नियुक्त की है। नियमों में उदारता बरतने के साथ ही अधिक व्यवसाय के अवसर खुले हैं और इसी के साथ जोखिम भी बढ़े हैं। अत: हमें अपेक्षित कुशलता एवं जोखिम प्रबन्धन के लिए मजबूत तंत्र की आवश्यकता होती है। अत: जोखिम प्रबन्धन के लिए कमेटी की नियुक्ति पर बल दिया जाने लगा है। अत: हमें उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक सुधार करने होंगे तथा साथ ही एन.पी.ए. के स्तर को कम करने के भी सघन प्रयास करने होंगे।

व्यवहार कुशल बैंकों को अब प्रतिस्पर्धा के मैदान में आगे बढ़ने के लिए इन चुनौतियों का सामना करने हेतु अपना उत्साह बढ़ाना है। वे अपने ग्राहकों के लिए नए और उत्कृष्ट उत्पादों/सेवाओं का प्रवर्तन करने के लिए सन्नद्ध हैं। उद्योग का उत्पादकता लाभप्रदत्ता और व्यवहार्य इकाइयों के रूप में प्रबंधन बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा और सिमटते हुए फैलावों के

परिणामस्वरूप बैंकों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौती है। ग्राहकों की बढ़ती हुई प्रत्याशाओं ने बैंकों को प्रतिस्पर्धा में अग्रणी रहने हेतु वर्तमान सेवा की गुणवत्ता को सुधारने, उत्पादकता में सुधार के लिए प्रयास करने तथा सेवा के नए प्रकारों को विकसित करने तथा नए बाजार केन्द्रों को पहचानने के लिए विवश किया है।

अत: यदि हम उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारकों को पहचान लें और उनमें किए जाने वालें सुधारों पर अमल करते जाएं तो निश्चय ही हम अपने कड़े प्रयासों से बेहतर परिणाम पाने में निश्चित रूप से सफल होंगे। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि कम से कम समय में हम लक्ष्य प्राप्त करें । बस आवश्यकता है उत्पादकता में सुधार लाए जाने वाले प्रयासों में थोड़ी तेजी लाने की, यही समय की मांग है।

प्रधान रोकड़िया, पंजाब नेशनल बैंक, कालाजी गोराजी, उदयपुर (राजस्थान)

सूचना एवं सामुदायिक विकास

—दानबहादुर सिंह

सूचना एवं सामुदायिक विकास अत्यन्त विस्तृत तथा सामयिक विषय है। विकसित और विकासशील देशों में इस पर विस्तारपूर्वक चिन्तन एवं मनन हो चुका है। सूचना एवं सामुदायिक विकास जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर अनेक विशेषज्ञों ने अपने-अपने विचार और ज्ञान-मीमांसा भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट किए हैं। मुझे यहां उनके विचारों की न तो आलोचना करनी है और न विश्लेषण ही, तथापि सूचना एवं सामुदायिक विकास जैसे विषय पर प्रासंगिक यथार्थ को प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूं। **सूचना एवं सामुदायिक विकास में से** किस पर विचार पहले प्रकट किया जाए, मुझे कुछ आश्चर्य में डाल दिया क्योंकि दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं। **संभवतः दोनों ही दो प्रकार की तकनीकें हैं और ग्रामोत्थान तथा शहरी लोक समाज में दोनों ही उपयोगी हैं, दोनों में ही आत्मनिर्भरता प्राप्त करना एकमात्र लक्ष्य है।**

यदि गहराई से चिन्तन किया जाए तो पता चलेगा कि सामुदायिक विकास कोई एक नवीन प्रक्रिया नहीं है। इतिहास से पता चलता है कि इसका उद्‌भव तो सामुदायिक जीवन से बहुत पहले हो चुका था। सामूहिक प्रयास, निकट सहयोग और सामूहिक निर्णय का चलन तो एक विशिष्ट समुदाय के हित में अतीतकाल से ही चला आ रहा है। हमारे समाज में जीवन-यापन का यह एक सशक्त माध्यम रहा है। देखा जाए तो पता चलता है कि सामुदायिक विकास जैसे शब्द का प्रयोग पिछले लगभग चालीस वर्षों से चला आ रहा है। यद्यपि इस शब्द को उन महारथियों ने गढ़ा था जो विकासशील देशों का उत्थान योजनाबद्ध तरीके से करना चाहते थे। **आज तो सामुदायिक विकास को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक तकनीकी शब्द के रूप में स्वीकारा जाने लगा है, वास्तव में यह एक प्रकार से समाज विज्ञान है जो विकास में मानव घटकों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है।** सचमुच यह एक प्रकार का ऐसा आन्दोलन है जो सम्पूर्ण समुदाय के बेहतर जीवन के प्रोन्नयन हेतु तैयार किया गया है। प्रोत्साहन को ध्यान में रखकर समुदाय के लिए सब कुछ करना पड़ता है।

जहां तक मेरा विचार है, सामुदायिक विकास के निम्नलिखित तीन मूलभूत तत्त्व हैं :

(1) अपने आप अपनी सहायता अथवा सामुदायिक कार्य

(2) समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप संतुष्टि

(3) समुदाय के मूल्यों, परंपराओं और परिस्थितियों के अनुरूप ध्यानाकर्षण।

मूलतः सामुदायिक विकास उन प्रस्तावों के प्रति समर्पित है जो सामान्य जन-जीवन और संपूर्ण समुदाय की समस्याओं तथा उनके निराकरण से जुड़ा है। इसका तात्पर्य है कि सामुदायिक

विकास कार्यक्रम उसकी वर्तमान परिस्थितियों और अनुभूत आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। संभवत: लोग किसी न किसी प्रकार की अनिर्दिष्ट आवश्यकता की अनुभूति करते हैं और उसकी पूर्ति के लिए आकांक्षा करते हैं। इस प्रकार सामान्य जन-जीवन और बाह्य जगत् के मध्य एक गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। वही लोगों को प्रोत्साहित करता है और लोगों को तकनीकी और नैतिक मूल्यों के रूप में सहायता भी पहुंचाता है। बाहरी एजेंसियां लोगों की समस्याओं का निराकरण भी करती हैं; बशर्ते उनकी सामयिक रूप से पहचान कर ली जाए।

इस बात से स्पष्ट हुआ कि **सामुदायिक विकास लोगों के स्वार्थों की अपेक्षा उनकी कार्यशैली से जुड़ा है। परिणामस्वरूप सामुदायिक विकास कार्यक्रम सामान्यत: लोगों की कुछ मूलभूत आवश्यकताओं और उनके संतुलित कार्यक्रमों तक ही सीमित है।** उन्हें निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है :

(1) मूलभूत सामाजिक शिक्षा

(2) प्रौढ़ साक्षरता

(3) स्वास्थ्य और कृषि

(4) महिलाएं और युवा कार्यक्रम

(5) सहकारिता और मूलभूत ग्रामीण आर्थिक क्रियाकलाप

(6) घरेलू आर्थिक पहलू आदि।

विकासशील देश

वस्तुत: सामुदायिक विकास कार्यक्रम मुख्यत: विकासशील देशों में ही पाए जाते हें, इसका मूल कारण है कि ये वहाँ के कर्मकाण्डवाद एवं परंपराओं से किसी न किसी रूप में अवश्य जुड़े रहते हैं। घोर निर्धनता एवं सरकार ही इस प्रकार की परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी हैं। रूढ़िगत परंपराओं और तौर-तरीकों के प्रयोग के कारण ही वहां की उत्पादकता हीन हो जाती है। विकास कार्यों के लिए पूंजी निवेश के संसाधनों का सर्वथा अभाव पाया जाता है। पूंजी संरचना की दर नीचे चली जाती है। पर्याप्त मात्रा में रोजगार के सुअवसर नहीं मिलते। ग्रामीण समुदायों में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्राय: कटे से रह जाते हैं। गांवों के लोग बहुत कम मात्रा में विज्ञान एवं प्रौद्यागिकी का लाभ उठा पाते हैं क्योंकि उनके पास पर्याप्त मात्रा में न तो संसाधन हैं और न ज्ञान ही। परिणामस्वरूप समुदाय के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अवरोध खड़े हो जाते हैं। यही मूल बातें हैं जिनके कारण एक सुनियोजित कार्यक्रम और विकास के रूप में सामुदायिक विकास को सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक नेताओं का मुंह ताकना पड़ता है। अत: विकासशील देशों में वहां की सूचना प्रौद्योगिकी में आमूल चूल परिवर्तन लाना अपरिहार्य हो गया है, इसी के साथ-साथ सामुदायिक उत्थान कार्यक्रमों को विकसित एवं कार्यान्वित किया जाता है। अतीत काल से साफ पता चलता है कि लोगों के रहन-सहन को ऊंचा उठाने के लिए सामुदायिक विकास के माध्यम से नाना कदम उठाए गए। इन प्रयासों के बावजूद बहुधा कुछ बुनियादी सवाल

उठाए जाते हैं। वे अक्षांक कौन से हैं जो इन सामुदायिक विकास प्रयासों के कारण आए। खास-तौर से हमारे जैसे विकासशील देश में कृषि और सामुदायिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कुछ किया जा चुका है और उस पर धन भी पर्याप्त मात्रा में लगाया जा चुका है। किन्तु क्या उनमें कोई महत्वपूर्ण प्रगति हुई है? आज भी हमारी कुल जनसंख्या का लगभग 45 प्रतिशत उन बीमारियों से पीड़ित है जिन्हें आसानी से रोका जा सकता था, सच्चाई तो यह है कि हमारे पास बीमारियों की रोकथाम के लिए कारगर तौर-तरीके हैं। कृषि-उत्पादन अपेक्षतया कम है। ऐसा क्यों हो रहा है, जबकि हमारे पास साक्षरता की प्रतिशतता अच्छी है और सामुदायिक विकास के प्रयास विस्तीर्ण हैं। इससे स्पष्ट हो गया कि मानव विकास तथा आर्थिक विकास में अभिवृद्धि हुई है, यह सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। विकास तो मूल रूप से मानव और सामग्री के संसाधनों के समुचित प्रयोग से होता है। उससे वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होती है और लोगों की सामान्य प्रगति और कल्याण भी होता है। दुर्भाग्य से यह एक धीमी प्रक्रिया है। फिर भी विकास के नाम पर हम इसे समाप्त कर नए सिरे से शुरू नहीं कर सकते।

विकासशील देशों में विकास के नाम पर हम विकास के सभी तौर-तरीकों को उपयोग में लाने का भरसक प्रयास करते हैं, जैसे, राष्ट्रीयकरण करना, उदारीकरण, जनतंत्रीकरण अथवा एक दलीय पद्धति। उनके बारे में प्राय: लोगों का दृष्टिकोण विलोम है। ये चीजें ऐसे देशों में और अधिक कठिन हो जाती हैं जहां लोगों में सामाजिक, धार्मिक और भाषायी मतभेद अधिक हैं। इसलिए हमें तो मिट्टी से सोना उपजाना है। साफ तौर पर हम ऐसा नहीं कर सकते, हम मानव जाति को मनुष्य से वस्तु में नहीं बदल सकते अर्थात् कर्ता को कर्म में नहीं बदल सकते हैं। हम उन्हें मशीनी मानव नहीं बना सकते। उससे तो एक संतुलित सूचना की मांग बढ़ जाती है; ताकि वे सभी समय बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य करने के बारे में सोच सकें। ऊंचे-ऊंचे महासेतु, लंबी-लंबी सड़कें अथवा विशाल बांध निर्मित करने का तब तक कोई उपयोग नहीं जब तक आदमियों, औरतों और बच्चों को उनके सही उपयोग के बारे में बोध न हो। इसलिए, हमें इन साधनों के उपयोग करने की कला की बोधगम्यता पर विशेष बल देना है; ताकि ये चीज़ें आम लोगों तक पहुंच सकें और उनकी सोच में परिवर्तन आ सके।

इसलिए, इस बिन्दु पर हम सामुदायिक विकास और सूचना की प्रमुख भूमिका की पहचान कर सकते हैं। मेरे विचार से यह मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है क्योंकि उससे तो मानव और उसके सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का विकास होता है, एक खुशहाल मानव जीवन व्यतीत करने के लिए प्रत्येक मनुष्य, स्त्री और बच्चे की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित करनी होगी। मेरे विचार से मूलभूत आवश्यकताएं निम्नलिखित हैं :

(1) साफ-सुथरा और सुन्दर ग्रामीण पर्यावरण जहां कम से कम मानसिक वायु, जल और मिट्टी सम्बन्धी प्रदूषण न्यूनतम मात्रा में हों।

(2) लोगों की वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्वच्छ एवं पर्याप्त जलापूर्ति सुलभ हो।

(3) लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त भोजन आपूर्ति हो विशेषतया एक संतुलित आहार।

(4) सभी के लिए वस्त्रों की न्यूनतम आवश्यकता की आपूर्ति का प्रावधान करना—कम से कम दो जोड़े काम के लिए और दो जोड़े सामान्य रूप से पहनने के लिए—एक रात के लिए और एक महोत्सवों आदि के लिए।

(5) प्रत्येक परिवार के लिए एक साधारण आवास सुविधा जिसमें भोजन, वायु, प्रकाश और एकान्तता की सुविधा उपलब्ध हो।

(6) प्राथमिक चिकित्सा सेवा एवं संतोषप्रद प्रदूषण रहित शौचालय की व्यवस्था।

(7) गांव तक पहुंचने के लिए एक सम्पर्क सड़क हो और एक प्राथमिक सूचना केन्द्र की व्यवस्था भी सुलभ हो।

(8) घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ईंधन सुलभ हो।

(9) एक औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षण कार्यक्रम जो बच्चों को स्कूल जाने से पहले आरंभ हो और उसका मानदण्ड स्कूल के पश्चात् युवाओं और प्रौढ़ों तक हो। लेकिन उसका संबंध केवल समुदाय के लोगों और सांस्कृतिक मूल्यों के भीतर ही सीमित हो।

(10) आमोद-प्रमोद एवं आध्यात्मिक विकास की सुविधा भी उपलब्ध हो।

यदि सामुदायिक विकास को एक सामुदायिक कल्याण की मशीनरी समझा जाता है तो उसे सफलतापूर्वक चलाने के लिए सूचक का क्या योगदान होना चाहिए विकास कार्यों से जुड़े पत्रकारों को मुख्यतया तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए : (1) सूचित करना (2) व्याख्या करना (3) प्रोन्नयन, एक सुप्रसिद्ध सूचक एलान चाकले ने अपनी मैनुअल में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि "आर्थिक जीवन के यथार्थ को प्रकट करना ही मनुष्य का लक्ष्य नहीं होना चाहिए; बल्कि संबंधित सच्चाइयों का निर्वचन भी करना चाहिए। उन्हें प्रोन्नत कर पाठकों तक पहुंचाना चाहिए। आपके पाठक इस बात का अहसास करें कि विकास संबंधी समस्याएं कितनी गंभीर होती हैं। समस्याओं का चिंतन करना चाहिए और उनका निराकरण भी खोजना चाहिए।"

यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ देशों में सूचना प्रवाह की अवधारणा को एकांगी दृष्टिकोण से देखा जाता है किन्तु उपर्युक्त अवधारणा सामान्य जनता को एक ऐसी मशीन समझती है जिसका काम केवल पढ़ना, सुनना और देखना है। यही कारण है कि हमारे कुछ सूचना प्रयास अपने प्रदर्शन को खो बैठते हैं, प्राय: देखा जाता है कि सामुदायिक विकास के लिए सूचना गोली की

भांति निकलती है और किसी ने किसी को अपना निशाना बना लेती है। इसलिए हमें सामुदायिक विकास सूचना को उतना आसान नहीं समझना चाहिए जितना एक टाफी को सुखपूर्वक चूसना। इस प्रकार, हमें सूचना के ग्रहीता को एक सक्रिय रूप में मिलाने का अथक प्रयास करना चाहिए।

एक ग्रहीता को उतना अधिक सक्रिय होना चाहिए जितना एक प्रेषक अपनी प्रक्रिया में होता है। यदि ग्रहीता की शिक्षा, उसकी सामाजिक, आर्थिक दशा, उसकी भावनाओं, उसकी आदतों और उसकी सूचना शैली आदि के बारे में हम भली भांति जान लें तभी हम उसका उपभोग कर सकते हैं। इसलिए, सामुदायिक विकास सूचना में किसी के प्रति कोई अशिष्ट बात नहीं की जाती। यह बात तो ठीक वैसी ही है जैसे एक पत्नी अपने पति के लिए रात का भोजन तैयार करती है अथवा एक डबल रोटी बनाने वाला सुबह उसे बेचने के लिए तैयारी करता है। इसे तो मैं एक व्यक्तिगत बात ही समझूंगा और क्रमशः सामुदायिक विकास में उसे सामूहिक सूचना ही कहूंगा। अतः जब सूचना के दृष्टिकोण से सामुदायिक विकास की बात चलती है तो एक ग्रहीता को प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है।

सूचना के पारंपरिक नमूने के बारे में जिसमें संदेश-प्रेषक और ग्रहीता दोनों मिले हुए हैं, दुबारा विचार करने की आवश्यकता है। अतः हमें सामुदायिक विकास में सूचना के तकनीकी कौशल के बारे में पर्याप्त जानकारी हासिल करनी होगी। इसलिए, आरंभिक तौर पर मैं सुझाव देना चाहूंगा कि एक सूचक द्वारा पहले पहल जिस सूचना कौशल की आवश्यकता महसूस की जाती है, वह श्रवण करने का एक उपेक्षित कौशल है।

सामुदायिक विकास सूचना की शब्दावली में कोई भी एकांगी चैनल कभी संदेश को सच-सच नहीं बताता। हर जगह लोग यहां तक कि अत्यधिक दूर-दराज के गांवों में भी वहां की संपूर्ण जिंदगी के बारे में संदेश को थोपा जाता है। उससे उनके ज्ञान, विश्वास, स्वास्थ्य और परिवार के बारे में धक्का पहुंचता है। इस प्रकार नाना संदेश हमारे नियंत्रण के बाहर हो जाते हैं। यहां जो बात अत्यधिक महत्वपूर्ण है, वह यह है कि एक सुविज्ञ शिक्षक को यह भली भांति मालूम है कि कौन-सा चैनल अधिक कारगर साबित हो सकता है और उसका उपयोग कैसे किया जाए। इसके लिए जन-जागृति अत्यन्त आवश्यक है, यहां यह बात महत्वपूर्ण है कि क्या ग्रहीता समाचार पत्र पढ़ता है समाचार पत्र के किस भाग को अधिक पढ़ता है, हम उस पृष्ठ पर अपने संदेश को कैसे पाते हैं, एक लिफाफे के भीतर एक प्रेस विज्ञप्ति को भरकर भेज देने मात्र से सही उत्तर की अपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए। क्या आपका ग्रहीता रेडियो सुनता है यदि हां, तो वह कौन-सा कार्यक्रम है और उसका अभिप्राय क्या है आदि।

इस प्रकार सूचना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से दो अथवा उससे अधिक लोग अपने विचारों, तथ्यों, अनुभूतियों, ज्ञान और प्रभावों का आदान-प्रदान करते हैं। अतः सूचना कार्यक्रम की महत्त्वपूर्ण भूमिका सामुदायिक विकास से जुड़ी है, यह बात हमें भली भांति मालूम होनी चाहिए कि एक सक्षम अध्यापक लोगों के व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहता है और वह

उन्हें अज्ञात से ज्ञात की ओर ले जाता है। यदि सूचना प्रक्रिया को भली-भांति काम में लाया जाए तो वह विकासशील देशों के करोड़ों लोगों को अज्ञानता, गरीबी और बीमारी से छुटकारा दिला कर उन्हें आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से ऊपर उठने में मददगार साबित होगा। सामुदायिक विकास संदेश को तैयार कर के करोड़ों लोगों में इस प्रकार वितरित किया जाए कि वह उसे प्राप्त करें, उसे समझें और स्वीकारें तथा उसका समुचित उपयोग करें जिससे सामुदायिक विकास की चुनौतियों का सामना किया जा सके। यदि हम इस चुनौती को स्वीकार कर सकें तो हम आर्थिक संसाधनों जैसे जमीन, श्रमिक, पूंजी और उद्यमियों को एक नया अर्थ दे सकेंगे, हम लोगों को यह जानकारी देने में सफल हो सकेंगे कि वे राष्ट्र, जनता, समाज और विज्ञान को भली-भांति पहचान सकें और उसके बहुमुखी संसाधनों का उपयोग अधिक उत्पादन में लगाएं, जिसमें वे निजी और समुदाय का कल्याण कर सकें।

निष्कर्ष यह कि सभी स्तरों पर संपूर्ण सामुदायिक विकास सांचे में सावधानी पूर्वक तैयार सूचना कार्यक्रम का समाकलन करते हुए लोगों की अन्तर्निहित आवश्यकताओं को अनुप्रमाणित करना संभव है, अतः सूचना प्रक्रिया की स्थिरता का लक्ष्य एकमात्र श्रोताओं को प्रोत्साहित करना, उनकी आवश्यकताओं को अस्तित्त्व में लाना और लोगों को कर्म की ओर प्रेरित करना ही युक्तिसंगत लगता है, यहां विश्वसनीयता और स्वीकार्यता हमारी प्रेरणा के स्रोत बन सकते हैं।

कोठी नं. 3, टाइप-IV, सेक्टर-IV, नया नंगल-140126 (पंजाब)

1464 HA/2001—6B

उर्दू काव्य-शास्त्र में काव्य हेतु विवेचन

—डॉ० रामदास 'नादार'

शायर में क्या गुण, योग्यताएं एवं अहर्ताएं होनी चाहिएं इसका विवेचन उर्दू शयरों एवं आलोचकों दोनों ने ही किया है। यह विवेचन जहां उर्दू कवियों की काव्य-उक्तियों में प्राप्त होता है, वहां उर्दू समीक्षकों ने भी काव्य हेतुओं पर अपनी समीक्षाओं में प्रकाश डाला है। यह एक सर्वमान्य धारणा है कि कवि पैदा होता है, बनता नहीं । इस उक्ति से स्पष्ट है कि उर्दू चिन्तक कवि के जन्मजात गुणों को अधिक महत्व देते हैं, यहां तक कि 'तबा-ए-सलीम' या 'तबा-ए-रवां' को वे कवि बनने के लिए अनिवार्य समझते हैं। उनके विचार में जिस व्यक्ति के पास ऐसी 'तबा' नहीं होती, वह कवि नहीं बन सकता। एक प्रकार से उनके समीप यह एक मौलिक अनिवार्यता है।

उर्दू आलोचकों के काव्य हेतु सम्बन्धी मतों का विश्लेषण करने से पूर्व उर्दू शायरों के विचारों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। उर्दू शायरों की उक्तियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता हे : (1) कवि के व्यक्तिगत गुण अथवा योग्यताएं, (2) उसकी काव्य कला-गत विशेषताएं। पहले शीर्षक के अन्तर्गत वे सब बातें आ जाएंगी जिनका सम्बन्ध कवि के व्यक्तित्व से है। मोटे तौर पर इनमें उन सभी बातों का उल्लेख करना होगा जिनमें कहा गया है कि कवि के पास 'रवां तबा' हो, तथा वह संवेदनशील, चिन्तनशील, कोमल-स्वभाव वाला, हृदय में दर्द एवं पीड़ा रखने वाला, नुक्तादान, प्रतिभावान एवं चिन्तामुक्त हो। इस बारे में सराज, सोज़, मीर, इनशा, शाद, जोशिश, शोक, जुर्रत, दाग, ज़फ़र, इक़बाल तथा इस्माईल आदि शायरों के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'मीर' कवि को 'रवां तबीयत' का स्वामी कहते हुए उसे ऐसे व्यक्तित्व का मालिक समझते हैं जिससे काव्य सागर के किनारे का सौंदर्य बना रहता है और जिसकी 'रवां तबीयत' की लहर शतरंगी होती है।[1] इतना ही नहीं, वह कवि की उपमा एक दरिया से देते हैं जिसकी तबीयत में प्रवाह होता है। 'ज़फ़र' भी मीर की भांति शायर की तबीयत को दरिया का उमड़ता हुआ प्रवाह मानते हैं। उनके विचार से कवि में काव्य-सृज़न कला ईश्वर प्रदत्त होती हे। अफबस्त भी शायर की तबीयत को दरिया तो समझते ही हैं किन्तु 'नूर (प्रकाश) का दरिया' जिससे नए नए मज़मून (विषय) मोतियों की सूरत में प्राप्त हैं। 'शाद' शायर की तबीयत और दरिया की तुलना करते हुए पूर्वोक्त की उत्कृष्टता सिद्ध करते हैं। उनका कथन है कि शायर की तबीयत और दरिया दोनों ही

(1) जलवा है मुझी से लबे-दरियाए-सुखन पर
सद रंग मेरी मौज है, मैं तबा-ए-रवां हूं॥
(मीर)

बहते रहते हैं लेकिन उपयुक्त तबीयत के जोश में जो बहती हुई धारा होती है, उससे दरिया वंचित रहता है। जहां 'दाग़' शायर के लिए अच्छी तबीयत का होना जरूरी समझते हैं और जिसे वह माशूक के हुस्न की तरह आम शायरों में दुर्लभ या अप्राप्य मानते है, वहां 'रियाज' के समीप शायर का स्वभाव ला ओ बाली होता है, किन्तु इसके साथ-साथ वह इसे एक मज़े तथा करीने का इन्सान भी मानते हैं। इक़बाल ने इन तमाम गुणों के लिए एक शब्द घड़ लिया है और इसे वह 'शायराना तबीयत' से अभिहित करते हैं। उनके विचार में शायर होने के लिए 'शायराना तबीयत' का होना आवश्यक है अन्यथा प्रशिक्षण भी व्यर्थ सिद्ध होगा जैसे सर्व (एक ऊंचा वृक्ष) का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ता है किन्तु इसमे चूंकि कोई जान नहीं होती, इसलिए पानी में प्रतिबिम्ब पड़ने के बावजूद भी सर्व हरा-भरा नहीं होता। 'शाद' और 'मुबारक' इसी बात को अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं। शाद का कहना है कि शायर को स्वाभाविक तौर पर ही शायर होना चाहिए तथा इसकी तबीयत बिना प्रयास के ही काव्य-सृजन की ओर प्रवृत्त हो। यह उसकी तबीयत का तकाज़ा हो कि शेर कहे बिना उसे चैन न आए। 'मुबारक' शायर के हृदय में एक 'मज़े' की प्रकल्पना करते हैं। वे कहते हैं कि यदि उसके दिल में 'मज़ा' हो तो फिर उसे बादा(शराब) व पैमाना की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि इस 'मज़े' से तबीयत खुद रंग पर आ जाती है। 'सोज़', 'जुर्रत', 'शौक नीमवी' तथा 'अख्तर अनसारी' कवि के लिए संवेदनशील होना जरूरी मानते हैं। दर्द व गम उसकी छुट्टी में पड़ा होना चाहिए। 'सोज़' का ख्याल है कि शायर गम, पीड़ा, सोज़ व गुदाज़ (वेदना) का मजमुआ (संग्रह) होता है। और वह सहृदयों के लिए ही आफरीदा (पैदा) होता है। 'अख्तर अनसारी' गम उठाने की प्रवृति को ही असली काव्य हेतु स्वीकार करते हैं। उनके विचार में कवि को कवि बनाने वाली वास्तव में यही प्रवृत्ति है। जर्रत के मत में शायर के पास बेचैन हृदय का होना आवश्यक है - इसी कारण वह शेर कहने को विवश होता है। शौक नीमवी तो शायर ही उसे मानते हैं जिसने चोट खाई हो और जिसके हृदय में दर्द एवं पीड़ा विद्यमान हो। इस विवेचन से स्पष्ट है कि कवि का हृदय अत्यन्त कोमल तथा संवेदनशील होना चाहिए। दूसरों की पीड़ा देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठे। ऐसा व्यक्ति ही इस उत्तम कला का अधिकारी है जिसे 'मीर' के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि इस शरीफ फन (कला) को वही लोग अर्जित करते हैं जिनकी तबीयतें सूक्ष्म तथा कोमल होती है।

इन स्वभावगत गुणों के अतिरिक्त कवि के लिए प्रतिभाव होना तथा अन्य बौद्धिक गुणों से युक्त होना भी जरूरी है। उसकी चिन्तन शक्ति अपूर्व होनी चाहिए जिसकी पहुंच दूर तक हो। वह बारीक एवं सूक्ष्म बातों को समझ तथा ग्रहण कर सके। पारिभाषिक शब्दावली में कवि के इस गुण को 'नुक्तादानी' कहते है। 'सराज' कवि के लिए 'नुक्तादान' होना अनिवार्य समझते हैं और उसे अर्थ सागर में गोता (डुबकी) लगाने वाला मानते है। 'जफ़र' कवि स्वभाव की उत्तमता, गाम्भीर्य तथा चिन्तनशीलता के कायल है। उनका मत है कि कवि की चिन्तन-कैंची बहुत तेज़ होती है। मोमिन कवि को साक्षत् प्रतिभा कहते हैं। उनके विचार में कवि नुक्ता परवर, नुक्ता निवाज़ (सूक्ष्म तत्व प्रेमी) कद्रदान और प्रतिभा का मूर्त रूप होता है। मसहफी इन्हीं गुणों के सार

को एक शब्द 'फिक्ररसा'[4] में समाहित कर देते हैं। उनके विचार में कवि की चिन्तन शक्ति 'रसा' अथवा दूर तक पहुंचने वाली होती है। कवि की चेतना वहां तक पहुंच जाती है, जहां आम व्यक्ति नहीं पहुंच पाता। जब सीमाब कवि से यह अपेक्षा रखते हैं कि वह भावों को ऊंचा उठा दे तथा अंधेरों को प्रात: में बदल दे तो स्पष्टत: उनका संकेत इसी 'फिक्रे-रसा' की ओर ही है जिसकी सहायता से यह सब कुछ सम्भव हो सकता है। सराज इसे ही खुश फिक्री का नाम देते है।[5] उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चिन्तन शक्ति अथवा चिन्तनशीलता कवि का एक अनिवार्य गुण है। पहले कहा गया है कि काव्य-सृजन के लिए कवि का गमज़दा होना आवश्यक है, किन्तु मीर इससे अपनी असहमति प्रकट करते हैं। वे इसके बिल्कुल विपरीत मत रखते हैं। उनके विचार में कवि को अपनी चिन्ता नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह चिन्ता उसकी मानसिक शक्तियों को दुर्बल बना देती है और वह काव्य सृजन के योग्य नहीं रहता। अत: कवि को चिन्तामुक्त होना चाहिए।

काव्य हेतु विवेचन में कवि के अन्य स्वभावगत गुणों में 'शौक लखनवी' तथा 'अनीस' के मतों का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। शौक लखनवी शायर के लिए 'दिलवाला' व्यक्ति होना जरूरी समझते है। 'दिलवाला' शब्द में 'उदारता, सहृदयता, दया तथा शौर्य आदि सभी गुण आते हैं किन्तु कवि के सन्दर्भ में इसका अर्थ संवेदनशीलता अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। फिर भी, जब हम अनीस की यह उक्ति पढ़ते हैं कि 'शायर वोह नौजवान है जो कभी हिम्मत नहीं हारता' तो 'दिलवाला' से शौर्य का उद्‌भास भी होने लगता है, क्योंकि जीवन संघर्ष से जूझने के लिए कवि को 'कायर ' नहीं बल्कि 'दिलवाला' होना चाहिए।

कवि के स्वभावगत गुणों का वर्णन करने के पश्चात् अब हमें कवियों की उन उक्तियों का विश्लेषण करना है जिनसे कवि के कलागत गुणों पर प्रकाश पड़ता है। इनमें बौद्धिक उत्कृष्टता, सामान्य ज्ञान, छन्द ज्ञान, शैली वैशिष्टय तथा भाषा पर अधिकार आदि सभी गुणों का समावेश है। यहां हम जिन कवियों की उक्तियों का उल्लेख करेंगे, उनमें मुख्य निशाती, मीर असर, मसहफी, सौदा, इनशा, जोशिश, रिन्द, जौक, इक़बाल, शाद, खलीलुल-रहमान, शिबली आदि है। निशाती शायर के लिए कला का मर्मज्ञ होना जरूरी समझते हैं। सौदा का विचार है कि शायर जहां अर्थ वैशिष्ट्य पैदा करने की कला का ज्ञाता होता है, वहां वह शब्दों की बन्दिश (क्रमबद्धता), अभिव्यक्ति की पावनता, और वक्तृता की स्वच्छता का भी ख्याल रखता है। इनशा शायर को वक्तृता बालागत (आलंकारिक शैली) एवं लतीफा गोई में अद्वितीय मानते हैं। उनका यह भी मत हे कि कवि में एक विषय को हज़ार ढंग से बांधने की क्षमता होती है। जुर्रत और मसहफी[6] शैली-वैशिष्ट्य पर बल देते हैं। जोशिश कवि के लिए नए-नए शब्दों की तलाश आवश्यक समझते हैं। कवि बनने के लिए एक अन्य अनिवार्य हेतु छन्द-ज्ञान है। छन्द-ज्ञान के अभाव में कवि के काव्य में संगीतात्मकता जो कविता की जान है, नहीं आ सकती। अत: कवि के वास्ते कवि-पद पर आसीन होने के लिए छन्द-ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। रिन्द तो छन्द-ज्ञान के बिना शायर को अपूर्ण मानते हैं। मसहफी भी इस विचार से सहमत है किन्तु कवि कर्म के इन उपादानों की प्राप्ति

के लिए उच्चशिक्षा, बुद्धि बल, चेतना शक्ति, सामान्य ज्ञान आदि की आवश्यकता होती है। इसीलिए इन सब की अनिवार्यता कवियों ने यत्र तत्र अपनी उक्तियों में स्वीकार की है। शौक लखनवी उच्चशिक्षा प्राप्त करना जरूरी समझते हैं क्योंकि उनके विचार में इससे मानव बुद्धि प्रकाशित होती है। किन्तु मीर, असर, इस मत से सहमत नहीं। वह कवि बनने के लिए उच्चशिक्षा प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझते। उनका ख्याल है कि शायर के लिए ज्यादा पढ़ा लिखा होना जरूरी नहीं, हां उसे इतनी सूझ बूझ अवश्य होनी चाहिए कि यह इबारत से आशय समझने में समर्थ हो अर्थात् उसमें अर्थ-बोध की योग्यता हो। खलीलुल रहमान कवि के लिए चेतना और बुद्धि का मालिक होना जरूरी ख्याल करते हैं। उनके विचार में उसकी अन्य योग्यताएं, सत्यनिष्ठता एवं स्वाभिमान हैं। सबा कवि को आली-दिमाग (उत्तम बुद्धिवाला) मानते हैं। और शिबली उसके लिए नूतन विधाओं का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझते हैं। 'शब्द' के समीप उसे ज्ञान का भण्डार होना चाहिए तथा शेर की कला पर उसकी गहरी पकड़ हो और उसकी चेतना को भी सही एवं दुरूस्त[3] होना चाहिए। इक़बाल तो बुद्धिमानों की संगति तक की सिफारिश करते हैं। उनके विचार में इससे परिपक्वता आती है। मसहफी ने निरन्तर ज्ञान अर्जित करते रहने की वकालत की है।

कुछ कवि तो इन सबसे बढ़कर प्रशिक्षण तथा अभ्यास की महता स्वीकार करते हैं। 'मसहफी' के समीप शायर के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। उस का ख्याल है कि जिस प्रकार कलमतराश से कलम तैयार होती है, उसी तरह प्रशिक्षण से नातराशा शायर तराशीदा बन जाते हैं। शायर बनने के लिए साधना की बड़ी आवश्यकता है। नज़्म तबतबाई का विचार है कि जब तक एक उग्र सजदा में न कटे, कवि काव्य-कला के भेदों से परिचित नहीं हो सकता। मीर तो एक कदम और भी आगे बढ़ कर काव्य-साधना में उन्मत हो जाने का खतरा भी हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। उनके विचार में शायर का नाम जिगर का लहू जलाने के पश्चात् उसी प्रकार चमकता है जिस प्रकार नगीना काट-छांट के बाद चमकता है। आतिश भी शायर को मेहनत करने वाले मज़दूर की संज्ञा देते हैं। उनके समीप शायरी एक व्यायाम है जिसका प्रशिक्षण गुरु अथवा उस्ताद के बिना नहीं हो सकता। काव्य कला में पूर्णता प्राप्त करने के लिए 'रिन्द' के अुनसार उस्ताद की आंख देखनी जरूरी है। 'मुहम्मद हुसैन आज़ाद' भी उस्ताद की खिदमत में बैठना आवश्यक समझते हैं। किन्तु प्रशिक्षण तथा उस्ताद के निदेशन को जरूरी समझते हुए भी 'यकीन' नैसर्गिक योग्यता को अधिक महत्व देते हैं। उनका कथन है कि यह ठीक है कि गुरु एक पत्थर को नगीना की भांति बना सकता है किन्तु यदि किसी की योग्यता ही निकृष्ट हो तो फिर उत्तम गुरु भी कुछ नहीं कर सकता। 'सोज़' इसी जन्मजात योग्यता को विवेक कहते हैं जिसके बिना सजावट के लिए रूधिर और मेंहदी में से कौनसी वस्तु का चयन किया जाए, का निर्णय करना सम्भव नहीं। 'जौक' उपर्युक्त काव्य हेतुओं के अतिरिक्त कवि के लिए कल्पना शक्ति का मालिक होना भी जरूरी ख्याल करते हैं। उनका विचार है कि शायर की कल्पना शक्ति बहुत ऊंची होती है और इसमें हर जादू को एक ताज़ा शैली में संप्रेषित करने की योग्यता होती है।

एक अन्य काव्य-हेतु प्रेम पीड़ा है। इश्क की आग अथवा प्रेमाग्नि काव्य-सृजन का हेतु बनती है इस तथ्य की पुष्टि 'इस्माईल' के इन शब्दों से होती है - 'शायर बनने के लिए पहले झूठ-मूठ का आशिक बना जाए और जो अगले ज़माने का खाया है, उसकी जुगाली की जाए।' इसी बात को 'शौक लखनवी' ने एक दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि शायर बनने के लिए हसीनों की प्रशंसा में उत्तम-उत्तम शेर कहने जरूरी हैं। शाद जहां कवि के लिए आशिक मिज़ाज होना जरूरी समझते हैं, वहां वे उसके कुछ अन्य गुणों की परिगणना भी करते हैं। वे कहते हैं कि शायर संकीर्णता से दूर हो, उसे धर्म तथा इतिहास का पूरा ज्ञान हो।

सारांश यह है कि उर्दू कवियों ने अपनी काव्य उक्तियों में काव्य सृजन में प्रतिभा, बुद्धि, सम्वेदनशीलता, सामान्य ज्ञान (व्युत्पति), कल्पना, प्रेम पीड़ा, शैली वैशिष्ट्य, छन्द-ज्ञान, अभ्यास आदि अनेक हेतुओं की उद्भावना है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि उर्दू कवियों ने काव्य हेतु वर्णन में विस्तार से काम लिया है और कहीं कहीं तो वे दूर की कौड़ी लाने से भी नहीं चूके। निस्सन्देह उनका यह वर्णन शास्त्रीय न होकर केवल काव्य-उक्ति मात्र ही है, फिर भी इन उक्तियों में से पर्याप्त काम की बातें निकल सकती हैं और उपर्युक्त विश्लेषण इसका प्रमाण है कि इन उक्तियों में काफी उपयोगी एवं काम की बातें हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उर्दू आलोचक शायरों के उक्त मन्तव्यों से बहुत दूर नहीं जा पाए तथापि काव्य हेतु सम्बन्धी उनके मतों की समीक्षा यहां जरूरी है।

उर्दू शायरी अरबी-फ़ारसी शायरी से प्रभावित है और यदि हम यह कहें कि उर्दू शायरी अरबी-फ़ारसी काव्य-शास्त्र की मिति पर खड़ी है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। 'इठनरशीक' और 'निज़ामी समरकन्दी' के काव्य-शास्त्र विषयक विचारों से उर्दू वालों ने भी बहुत लाभ उठाया है। इठन रशीक शेर की एक भवन से उपमा देते हुए इस भवन का आधार शब्द, छन्द, अर्थ एवं काफिया (तुक) को मानते हैं। उनके मतानुसार इस काव्य रूपी भवन का फर्श शायर की तबीयत, छत पुरानी परम्पराएं, दरवाज़ा अभ्यास और स्तूप (खम्बे) विधा एवं ज्ञान है। इस भवन के निवासी अर्थ हैं। किसी भी भवन की शान उसके अन्दर निवास करने वालों से होती है। यदि वह नहीं तो कुछ भी नहीं। छन्द व तुक को रस्से समझ लीजिए जिनसे खेमा (तम्बू) तन कर खड़ा है।

निज़ामी अरूज़ी समरकन्दी प्रतिभा को 'मज़ाक' से अभिहित करते हैं और इसकी परिपक्वता के लिए अभ्यास तथा अध्ययन जरूरी समझते हैं। उनका ख्याल है कि कोई भी कवि अच्छे और प्रभावशाली शेर तभी कह सकता है जब वह अपने 'मज़ाक' को पुख्ता अथवा परिपक्व बना लेता है और परिपक्वता प्राचीन उस्तादों के काव्य का अध्ययन करने से आती है। वे चाहते हैं कि प्रत्येक कवि उस्तादों के कम से कम बीस हज़ार शेर अपनी दृष्टि से अवश्य गुज़ारे और जब 'शेरों सुख़न' का 'मज़ाक' परिपक्व हो जाए तब उसे छन्द-ज्ञान अर्जित करना चाहिए।'

अरबी-फ़ारसी के इन विद्वानों की चर्चा के पश्चात् उर्दू आलोचकों के काव्य हेतु सम्बन्धी विचारों का विवेचन करना उचित होगा।

उर्दू शायरों के पुराने तज़करे काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अधिक महत्व की पुस्तकें न होते हुए भी नितान्त अनुपयोगी नहीं कहे जा सकते। इसमें सन्देह नहीं कि इन तज़करों में भी काव्यशास्त्र सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध है। अत: उर्दू काव्य-शास्त्र के किसी भी शोधार्थी को इनमें पर्याप्त उपयोगी सामग्री मिल जाती है। 'मीर तक़ी मीर' ने अपने तज़करे 'नुकातुल-शोर' (जो फ़ारसी में है) में 'यकीन' के काव्य पर टिप्पणी करते हुए जो कुछ लिखा है, उससे हमें काव्य हेतु सम्बन्धी कुछ जानकारी प्राप्त होती है। अन्य समान बातों के अतिरिक्त 'मीर' कवि के लिए 'सुखन फहम' होना जरूरी मानते हैं। मीर ने 'यकीन' के बारे में यह टिप्पणी करते हुए कि वह शेर समझने का 'ज़ायका' नहीं रखता, लिखा है कि हर अच्छे कवि के लिए जरूरी है कि वह सुखन फहम भी हो। कई कवियों के सन्दर्भ में उन्होंने इस गुण का उल्लेख किया है। जहां मीर कवि में 'सुखन फहमी' (काव्य बोध की क्षमता) जरूरी समझते हैं, वहां उन्होंने 'खुश फिक्री' (उत्कृष्ट चिन्तन) को काव्य हेतुओं में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अपने तज़करे 'नुकातुल शोरा' में एक कवि 'मज़मून' के सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'मज़मून' यथापि कम लिखने वालों में से हैं किन्तु पर्याप्त 'खुश फिक्र' कवि हैं। खुशफिक्री के साथ-साथ उनकी दृष्टि में एक अन्य जरूरी काव्य हेतु 'बुलन्द खयाली' (उत्कृष्ट कल्पना) है। 'खुश फिक्री' एवं 'बुलन्द खयाली' उन्हें जहां भी किसी शायर के काव्य में दृष्टिगोचर हुई है, उन्होंने कवि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इसी कारण ''सौदा'' को उन्होंने 'बिस्यार खुश गौ' कहा है और उनकी 'फिक्रे आली' (उत्तम कल्पना) की श्लाघा की है। उनके विचार में खुशफिक्री कवि के काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करती है, उसे केवल तुकबन्द नहीं रहने देती। इसका एक अन्य लाभ यह होता है कि कवि के काव्य में एक प्रकार का रक्त (अन्विति) और 'तासीर' (प्रभविष्णुता) उत्पन्न हो जाती है। उनके मत में ये दोनों गुण तभी पैदा हो सकते हैं जब कवि में 'खुशफिक्री' के मादे की प्रचुरता हो। मुहम्मद हुसैन 'कलीम' की सराहना करते हुए इसी 'खुशफ़िक्री' को उन्होंने 'फिक्र रसा' से अभिहित किया है। वे कहते हैं कि कलीम की 'फिक्रे रसा' (चेतना अथवा कल्पना) आकाश तक पहुंचती है और उसकी 'फिक्र' की भुजाओं में अर्थों की कमान को झुकाने की शक्ति है। यह 'खुशफिक्री' या 'फिक्रे रसा' 'मौजूं तबा' लोगों की सम्पदा हो सकती है। 'फ़ितरी जज्बा', 'शायराना सलाहित', 'मौजूनी-ए-तबा', 'खानी-ए-तबा' तथा 'मज़ाके सलीम' आदि पर्यायवाची शब्द हैं। इन सब का अभिप्राय उसी 'शायराना तबीयत' से ही है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है और जो कमोबेश जन्मजात या ईश्वर प्रदत्त गुण हैं। अरस्तू की पुस्तक 'पोयटिक्स' का अनुवाद 'बोतिका' में अज़ीज अहमद ने शायरी के गुण को ईश्वरीय वरदान स्वीकार किया है। और शायरी के लिए विशेष सलाहियत (योग्यता) जरूरी मानी है। हाली भी शायर बनने के लिए एक शर्त 'मौजूं तबा' होना ही जरूरी ख्याल करते हैं। और इसे ईश्वर प्रदत्त समझते हैं।[1] स्पष्ट है कि इस 'मौजूनी-ए-तबा' में प्रतिभा से 'कुछ अधिक' की ही गूंज सुनाई देती है। सरवरी साहब 'रवानी-ए-तबा' या 'मौजूनी-ए-तबा' की बात करते हुए दो अन्य काव्य हेतुओं का भी उल्लेख करते हैं। वे हैं भाषा और शैली में प्रसाद गुण (कोमलता) और कल्पना शक्ति की उत्कृष्टता। सरवरी साहब के विचार में कवि बनने के लिए इन तीनों गुणों की जरूरत है। हाश्मी साहब 'मज़ाके-सलीम' का

ज़िक्र करते हुए शायरी को 'मौज़ूं तबा' लोगों की ही जागीर समझते हैं। इसी 'मौज़ूं तबीयत' को भांप कर ही ग़लिब ने हाली को कहा था कि "अगर तुम शेर न कहोगे तो अपनी तबीयत पर सख्त जुल्म करोगे।" मिर्ज़ा रुसवा भी 'मौज़ूं तबा' व्यक्ति को ही शायरी के योग्य समझते हैं उनका खयाल है कि जो 'मौज़ूं तबा' नहीं, वह काव्य सृजन तो क्या ठीक प्रकार से शेर पढ़ भी नहीं सकता।[5] एक अन्य स्थान पर वह इस 'मौज़ूनी-ए-तबा' को 'फितरते सलीम' कह कर पुकारते हैं और इस गुण के अभाव में अभ्यास आदि को भी व्यर्थ समझते हैं। वे लिखते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने प्रयास से सुन्दर नहीं हो सकता, उसी प्रकार 'फितरते सलीम' (परिष्कृत प्रकृति) भी बनाए से नहीं बनती। "प्राय: देखा गया है कि कई साहब शेर कहते कहते बूढ़े हो गए, मगर कोई मजे का शेर न निकला और एक नौसिखिया बच्चे ने वह शेर पढ़ दिया कि मुशायरा उलट गया।" किन्तु एक अन्य स्थान पर अपनी ही बात का खण्डन भी करते हैं और कहते हैं कि शायराना मज़ाक प्रयास अथवा अभ्यास से प्राप्त हो सकता है।

रशीद अहमद सदीकी उपर्युक्त सभी संज्ञाओं अथवा विशेषणों को एक ही शब्द में समाहित करने का प्रयत्न करते हैं। वे व्यक्तित्व को मदिरा से उपमा देते हुए इसे बहुत बड़ा काव्य हेतु मानते हैं, वे लिखते हैं, 'दरअसल (वास्तव में) शख्सीयत (व्यक्तित्व) शराब (मदिरा) होती है, जहां से शायरी नशा बन कर बरामद (निकलती) होती है।'

'शिबली', 'हाली', 'आल अहमद सरूर' तथा 'सरवरी' काव्य हेतुओं में 'कल्पना शक्ति' की भी परिगणना करते हैं। 'शिबली' ने तखय्युल (कल्पना) को आविष्कारक शक्ति माना है। वह दर्शन तथा काव्य दोनों में कल्पना शक्ति की समान रूप से आवश्यकता समझते हैं। यही कल्पना शक्ति दर्शन में समस्याओं को हल करती है तो काव्य में नए नए 'शायराना मज़मूं' (काव्यगत विषय) पैदा करती है। कल्पना-शक्ति भावों में उद्रेक का काम करती है। 'हाली' कल्पना-शक्ति को प्रत्येक शायर के लिए जरूरी खयाल करते हैं, यद्यपि किसी काव्य में यह अधिक क्रियाशील होती है और किसी में कम। 'सरवरी' भी 'कल्पना-शक्ति' की काव्य हेतुओं में गणना करते हैं, इसका संकेत हम पहले भी दे चुके हैं। 'हाली' के काव्य के सर्वप्रिय होने की चर्चा करते हुए वे बुद्धि से भी ज़्यादा कल्पना एवं अनुभूति की तीव्रता को महत्व देते हैं, साथ ही अभ्यास की उपयोगिता से भी उन्हें इनकार नहीं। आल अहमद सरूर शायरी को तख़य्युल (कल्पना) की मौसी की (संगीत)मानते हैं। उनके विचार में तखय्युल (कल्पना) शायरी की उड़ान में पंखों का कार्य करती है। मुमताज हुसैन और सरवरी कवि कर्म के लिए कल्पना शक्ति के साथ-साथ तीव्र अनुभूति तथा गहरे अवेक्षण की भी आवश्यकता समझते हैं। मुमताज हुसैन का कहना है कि बड़ी शायरी न तो केवल भाषा के बल बूते पर ही की जा सकती है और न केवल कल्पना शक्ति के सहारे। इसके लिए अगर एक ओर अनुभवों, गहरे अवेक्षण और तीव्र अनुभूति की आवश्यकता है तो दूसरी ओर उस ज्ञान की भी जो ऐन्द्रिय ज्ञान, कल्पना शक्ति, अनुभूति एवं चिन्तन-शक्ति सब का परिष्कार करता है। हाली के काव्य की उत्कृष्टता की चर्चा करते हुए

सरवरी साहब इसका कारण इन शब्दों में तलाश करते हैं, ''इनमें तखय्युल (कल्पना) से अधिक सूक्ष्य निरीक्षण और अनुभूति से अधिक बुद्धि की शक्तियां कार्य कर रही थी''।

उपर्युक्त काव्य हेतुओं के अतिरिक्त अध्ययन, भाषा पर अधिकार, छन्द-ज्ञान, अभ्यास तथा गुरू शिक्षा का भी अपना महत्व है। हाली, मजनूं गोरखपुरी, ऐहतिशाम हुसैन, खुरशीदुल इस्लाम, अब्दुल शकूर तथा सरवरी ने इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार व्यक्त किए है और इन काव्य हेतुओं की उपयोगिता सिद्ध करने का प्रयास किया है। हाली इब्न रशीक का हवाला देते हुए अपनी पुस्तक ''मुकद्दमा शेरो शायरी'' में कहते हैं, कवि को उत्तम कवि की रचनाएं याद होनी चाहिएं जिससे वह उन्हें अपने काव्य का आधार बना सके। जिस व्यक्ति को उत्तम कवि के काव्य स्मरण नहीं होंगे, यदि वह केवल अपने मन की उपज से कुछ लिख भी लेगा तो उसको कविता नहीं बल्कि प्रभावहीन या खोटा पथ कहेंगे।

'मजनूं गोरखपुरी' भी कवि के लिए उस्तादों के काव्य का ज्ञान जरूरी समझते हैं। ऐहतिशाम हुसैन अभ्यास और गुरू शिक्षा का महत्व मानते हुए 'हसरत' का उल्लेख करते हैं और कहते हैं कि 'हसरत' का विचार था कि शेरोसुख़न के सन्दर्भ में सतत अभ्यास तथा अनुभव तो महत्वपूर्ण है ही किन्तु गुरू-शिष्य पद्धति भी कोई कम जरूरी नहीं। उनको खयाल था कि अच्छे गुरू की सहायता से काव्य सम्बन्धी गुण, दोष शीघ्र समझ में आ जाते हैं। ऐहतिशाम हुसैन भाषा पर अधिकार की भी वकालत करते हैं। उनके विचार में भाषा के उचित प्रयोग, शब्दों की शक्ति और रंग रूप की पहचान के बिना शायर अपनी कला से परिचित नहीं हो सकता। 'खुरशीदुल इस्लाम' के मत में 'नज़्म' लिखने के लिए भाव, विचार और संगीतात्मकता का सामंजस्य अभीष्ट है। 'सरवरी' 'इक़बाल' की काव्य-कला पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कल्पना के साथ भाषा पर अधिकार कवि कर्म के लिए जरूरी ख़याल करते हैं। और इनमें शरीर आत्मा का सम्बन्ध मानते हैं। 'हाली' शेर के लिए छन्द अनिवार्य नहीं मानते फिर भी छन्द-ज्ञान की आवश्यकता के पक्षधर हैं क्योंकि इससे शेर के गुण और प्रभाव में उत्कर्ष हो जाता है। हाली का विचार है कि भाषा पर अधिकार के अभाव में एवं उचित शब्दों के चयन में कवि के असमर्थ होने की अवस्था में कल्पना-शक्ति भी बेकार है।[3] मोटे तौर पर 'हाली' तीन काव्य हेतुओं पर बल देते हैं—(1) कल्पना शक्ति, (2) प्रकृति अध्ययन, (3) शब्दों पर आधिकार।

अभिव्यक्ति सामर्थ्य तथा शैली वैशिष्ट्य का भी अपना महत्व है। 'मीर' का विचार है कि इससे कवि के विशिष्ट व्यक्तित्व की स्थापना होती है और अच्छा कवि बनने के लिए अपनी विशेष शैली रखना अनिवार्य है। 'कलीम' के विषय में ही उनकी एक उक्ति इस प्रकार है, 'तरज़श बतर जे कसे माना नेस्त।' 'मीर' का विचार है कि शेर में प्रभविष्णुता भाषा की सादगी, सरलता, स्वच्छता एवं प्रवाह से ही आती है। इसलिए वे शेर में स्वाभाविकता एवं अकृत्रिमता को सर्वोपरि समझते हैं। साथ ही वे ये भी मानते हैं कि यदि कवि का मुशाहदा (सूक्ष्म अवलोकन) विस्तृत होगा तो उसके काव्य में एक गहराई उत्पन्न हो जाएगी। 'सज्जाद' के विषय में अपने मत को व्यक्त करते हुए उन्होंने इन्हीं काव्य-गुणों की ओर संकेत किया है। 'मीर' के 'नुकातुल शोरा'

में स्थान-स्थान पर कवियों के सम्बन्ध में उनकी ऐसी उक्तियां मिलती हैं जिनसे काव्य-हेतु सम्बन्धी उनके विचारों पर प्रकाश पड़ता है। मीर के तत्सम्बन्धी कुछ विचार हमें 'नुकातुल शोरा' के अन्त में प्राप्त होते हैं जिनमें भाषा, वाक्य-विन्यास तथा भाषाविषयक दोषों आदि का उल्लेख मिलता है। उनका विचार है कि कवि से इतर अन्य कोई भी व्यक्ति इन्हें नहीं समझ सकता। इनका ज्ञान 'सलीका-ए-शायरी' पर निर्भर है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि उर्दू समीक्षकों ने 'मौजूनी-ए-तंना' जिसे वह जन्मजात अथवा ईश्वर प्रदत्त गुण मानते हैं, को सबसे अधिक महत्वपूर्ण काव्य हेतु माना है। इसके अतिरिक्त काव्य-हेतुओं में उन्होंने अध्ययन, संसार का सूक्ष्म निरीक्षण, लोक ज्ञान, छन्द-ज्ञान, भाषा पर अधिकार, गुरूशिक्षा अभिव्यक्ति सामर्थ्य तथा विशिष्ट शैली आदि की भी गणना की है।

इन सबसे अलग आजाद एक प्रकार के जनू को कवि कर्म के लिए जरूरी समझते हैं। 'अब्दुल शकूर' साहब के स्थान पर काव्य निर्माण के लिए अलौकिक प्रेरणा या इल्हाम की भी चर्चा करते हैं। किन्तु डा० खालिद रशीद अपने शोध ग्रन्थ 'उर्दू शोरा का तनकीदी शऊर' में शायरी को 'इल्हाम (देवी प्रेरणा), खफ़फ़ानी (उन्माद) और इज्तरारी फ़ेल (विह्वल ताजन्य कार्य) समझने का विरोध करते हुए और वास्तविकता का अनावरण करते हुए कहते हैं कि कवि असाधारण रूप से सम्वेदनशील होता है। उसका व्यक्तित्व उत्तम, उसका प्रकृति एवं कला विषयक अध्ययन विस्तृत होता है। उसकी दृष्टि दूर तक देखने एवं पहुंचने वाली तथा निरीक्षण सूक्ष्म होता है। उसकी आलोचनात्मक चेतना उसके अध्ययन और निरीक्षण द्वारा प्रशिक्षित होती है तथा इन दोनों का निचोड़ होती है। उसकी शायरी बड़ी साधना एवं परिश्रम का फल होती है। वह जो कुछ कहता है, उसमें सूझ-बूझ को दख़ल होता है।

स्पष्ट है कि आधुनिक समीक्षकों को काव्य-सृजन में इल्हाम सम्बन्धी मान्यता स्वीकार्य नहीं। वे परिश्रम, साधना तथा कवि की अपनी सूझ-बूझ का अधिक महत्व देते हैं।

20/30 मोती नगर, नई दिल्ली—110015

तालाब बदल सकते हैं तस्वीर देश की

—राम दत्त "अजेय"

प्राकृतिक सुरम्यता का देश, पर्वत श्रृंखला, नदियों, सरोवरों, झीलों और जलाशयों का देश, झरनों-प्रपातों का देश, वनों से आच्छादित सुखद पर्यावरण के लिए विख्यात देश में पानी-पानी और फिर पानी के लिए त्राहि-त्राहि सुनाई दे तो कहीं न कहीं खोट तो है और यदि खोट है तो उसे रेखांकित करना हम सबका दायित्व है।

हिमालय के मुकुट से महिमामण्डित होने वाला देश, सागर जिसके चरण पखारे, गंगा, यमुना, नर्मदा, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी जिसे तृप्त करें ऐसा देश पानी-पानी के लिए त्राहि-त्राहि करे तो चौंकना पड़ता है और कुछ सोचने पर मजबूर होना पड़ता है। पावन सरिताओं से आवृत्त क्षेत्र प्यासा हो जाए तो यह चिन्तनीय और सोचनीय है तथा विचारणीय भी ।

देश के किसी भी कोने में चले जाइए, हर एक क्षेत्र जल समस्या से ग्रस्त है पेयजल एवं कृषि की सिंचाई के पानी का अभाव है हमें इस अभाव से यथाशीघ्र उबरना होगा अन्यथा "बिन पानी सब सून" की स्थिति बहुत अच्छी नहीं होगी।

जल भूतल पर प्रकृति द्वारा प्रदत्त अमूल्य निःशुल्क अनुपम उपयोगी उपहार है। देश के कई भागों में सुरम्य वातावरण के केन्द्र रहे सरोवर अब दम तोड़ने लगे हैं। जो पर्यावरण को स्वच्छ रखते थे वे सरोवर अब स्वयं पर्यावरण प्रदूषण के एक स्रोत बन चुके हैं।

खिले हुए कमल दलों पर मंडराते भौंरे, उनकी गुंजन कवियों को आकर्षित कर काव्य सृजन की प्रेरणा देने वाले तालाब आजकल पर्यावरणविदों की चिन्ता के विषय बन रहे हैं। अपार जलराशि वाले जलाशय अब मलाशय के केन्द्र बन गए हैं।

कहने को हम कह सकते हैं कि हैन्ड-पम्पों के जमाने में कुओं और बावड़ियों तथा सरोवरों से क्या सरोकार है, लेकिन यह सच नहीं है । हम चाहे जहां चले जाएं चाहे जितनी प्रगति कर लें, लेकिन हमारे अपने दैनिक जीवन में कुओं-बावड़ियों और सरोवर से सदैव सरोकार रहेगा अन्यथा मानव जीवन के समक्ष आज नहीं तो कल जीवनीय संकट अवश्य उत्पन्न हो जाएगा।

यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि समाज की जल सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करने के लिए प्राचीनकाल से ही स्थानीय स्तर पर तरह-तरह के तरीकों को अपनाकर मानीवीय सभ्यता को निरन्तर अंकुरित और अक्षुण्य बनाए रखने वाले उन स्थानीय तरीकों पर देश के योजनाकारों, शेषज्ञों, शासन एवं प्रशासन द्वारा न केवल अनदेखा किया गया है, बल्कि यथार्थ सत्य यह है कि उनकी जान-बूझकर उपेक्षा भी की गई है।

प्राचीनकाल से चल प्रबन्धक का और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का चोली-दामन का साथ रहा है, लेकिन वर्तमान विकास पद्धतियों ने पानी एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों के साथ समाज के रिश्तों को छिन्न-भिन्न कर दिया है, परिणाम सामने हैं बढ़ती हुई आबादी के दबाव और हमारी बेवकूफियों ने मिलकर जगह-जगह जल संकट उत्पन्न कर दिया है। इतना ही नहीं भू-गर्भीय जल स्तर के समक्ष भी गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है।

तभी तो सरोवरों से सराबोर रहने वाला क्षेत्र ''बुन्देलखण्ड'' जिसकी सीमा रेखा को नदियां रेखांकित करती हों वहीं पानी की समस्या का शोर सुनाई दे तो खोट तो कहीं है और उसे रेखांकित करना ही होगा।

बचपन से आज तक जब कभी बुन्देलखण्ड की चर्चा होती है तो शौर्य की पताकाएं मानस पटल पर तैरने लगती हैं और ''इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस'' अर्थात् यमुना, चम्बल, नर्मदा और टौंस जैसी पावन सरिताओं से आवृत्त क्षेत्र प्यासा हो रहा है यह चिन्तनीय और सोचनीय बात है।

भारतवर्ष के मानचित्र पर जमुना, चम्बल और नर्मदा का दबदबा सदैव रहा है तो फिर अब त्राहि-त्राहि कैसी और वह भी पानी के लिए।

आजकल पूरा देश जल समस्या से ग्रस्त है। पेयजल एवं कृषि की सिंचाई के लिए पानी आवश्यक है अन्यथा ''बिन पानी सब सून'' की स्थिति होती है और आज समूचा क्षेत्र पानी के लिए त्राहि-त्राहि कर रहा है।

हमारे पूर्वज जिनकी दृष्टि साफ थी, सोच स्पष्ट था और समाज कल्याण से ओतप्रोत उनका चिन्तन था। उन्होंने बरसाती जल के संग्रह के लिये तालाबों का निर्माण कराया और जगह-जगह सरोवर, झीलें, बावड़ियां तथा कूपों का निर्माण कराया। दरअसल इन सबसे कृषि कार्य भी सम्पन्न होता था और पेयजल की समस्या का भी निदान होता था, हां तब आबादी कम थी। आबादी का दबाव भी कम था।

धीर-धीरे धरती पर आबादी का दबाव बढ़ना शुरू हो गया और यंत्रों ने भी अपने पैर जमाकर पुराने जमे जमाए पैरों को उखाड़ना शुरू कर दिया । इससे समूची सभ्यता हिल गई, संस्कृति में कम्पन्न आ गया और मानव जो प्रकृति का चितेरा था, धीरे-धीरे मशीनों का गुलाम होने लगा। इधर शासन सत्ता में भी विदेशियों का हस्तक्षेप हुआ और सभी कुछ गड्ड-मड्ड होने लगा।

धीरे-धीरे हमारी जिन्दगी गुलामी की जंजीरों में बंधने लगी और फिर शोषण का नया दौर नए ढंग से प्रारम्भ हुआ और नाम विकास का दिया गया।

तालाबों के निर्माण बन्द हो गए और बड़े-बड़े बांधों का निर्माण प्रारम्भ होने लगा। बांधों के लिए नई-नई तकनीकें निकलने लगी, स्वतंत्र बहने वाली सरिताएं रोक दी गईं । हमने प्रकृति

के साथ छेड़छाड़ करना प्रारम्भ कर दिया और प्रकृति ने भी धीरे-धीरे बाढ़, सूखा का खेल खिलाना प्रारम्भ कर दिया लेकिन फिर भी ब्रिटिश राज्य शासन ने तालाबों की महत्ता को समझा और सिंचाई प्रखण्डों के साथ-साथ टैंक डिवीजन भी स्थापित किए। फलतः तालाबों की रक्षा होती रही।

वैसे बांधों के बनने से विकृतियों ने पदार्पण किया लेकिन धीर-धीरे और तब तक शायद उसकी आहट नियोजनकर्ताओं ने या तो सुनी नहीं या अनसुनी कर दी। चूंकि तब भी आबादी का दबाव कम था, प्रकृति अपने चरम पर फल-फूल रही थी, उसने भी छोटी-मोटी भूलों को नज़रअंदाज कर दिया।

समय बढ़ता गया, आजादी का सूर्योदय हुआ, विकास की चर्चा की जगह, विकास के नगाड़े धम-धमाने लगे और फिर बेहताशा प्रकृति का दोहन प्रारम्भ हो गया, कहीं सड़कों के नाम पर, कहीं निर्माण के नाम पर, कहीं बिजली उत्पादन के नाम पर एकदम से विकास की ताबड़तोड़ स्थितियों से पर्यावरण लड़खड़ाने लगा और प्रकृति संरक्षण को भूलकर हम दिन-रात प्रकृति का दोहन करने लगे और साथ ही साथ आबादी को बढ़ाने में भी पीछे नहीं रहे।

हमारे सिंचाई विभाग के बड़े आकाओं ने टैंक डिवीजन को समाप्त कर उसका विलीनीकरण सिंचाई विभाग में कर दिया, फलतः इसका दुष्प्रभाव आज सर्वत्र दिख रहा है।

सभी तालाब जो कभी जीवनदाता होते थे, आज या तो खेल के मैदान बन गए हैं या फिर कृषि कार्यों में उनका प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। उनकी यह उपयोगिता ही समाप्त हो गई जिसके लिए वे बनाए गए थे। क्योंकि तालाबों से एक ओर तो कृषि कार्य के लिए जल मिलता था दूसरी ओर नगरों, कस्बों और गांवों के कूपों का जल स्तर ठीक रहता था तथा अन्य सभी आवश्यकताओं का उत्पादन होता था जिनमें मछली, कमल, सिंघाड़ा आदि हैं और आजकल मखाना भी इन तालाबों से उत्पादित होने लगा है, लेकिन प्रतिवर्ष तालाबों की क्षमता घट रही है। शासन, समाज तथा सिंचाई विभाग की मिली-जुली उदासीनता को झेलकर ये तालाब अब बेवश हो गए हैं और कभी परोपकारी कृषि की भांति दाता बने तालाब आज उपेक्षा के शिकार होकर बेकार हुए पड़े हैं।

मूल गलती हुई तब, जब टैंक डिवीजन की उपयोगिता को दर किनार कर दिया गया और तालाबों की तकनीक पर बांध तकनीक प्रभावी हो गई। फलतः तालाबों के रक्षण-अनुरक्षण का बजट समाप्त हो गया। आबादी का दबाव बढ़ गया और जन उपेक्षा के शिकार हो गए ये सभी तालाब।

कटु सत्य है, कि नगरों के तालाब आज एक बहुत बड़े कूड़ेदान बन गए हैं या बनते जा रहे हैं। धार्मिक कट्टरता और आडम्बरपन ने भी तालाबों की स्थितियों को निरन्तर बदत्तर बनाया है। उदाहरण के तौर पर हर घर की हवन सामग्री एवं बासी पूजन सामग्री तालाबों में डाली जाती है। प्रतिवर्ष तीजा के दिन की फूलों की सजावट तालाबों में ही जाती है, महालक्ष्मी के पूजन का हाथी भी तालाबों के हिस्से में आता है, सावन में शंकर पूजन में लोग अपने घरों में जो शंकर जी की

पूजा-अर्चना करते हैं वह सभी कुछ तालाबों में ही जाता है और देवालयों की पूजन-सामग्री तालाबों के जिम्मे रहती है, इसके अतिरिक्त पितरपक्ष में श्राद्ध की सामग्री जिसमें फल-फूल के अतिरिक्त दोना-पत्तल होते हैं, वे सभी तालाबों में तो जाते ही हैं साथ ही साथ देवी प्रतिमाओं का विसर्जन भी तालाब में ही होता है और शादी विवाह के पश्चात् ''मैहर'' भी तालाब में ही डाला जाता है तो फिर क्या तालाब हमारे कूड़ेदान हैं ? या धार्मिक सांस्कृतिक कृत्यों के लिए आवश्यक हैं तो फिर इनकी जनउपेक्षा कैसी ? यदि तालाब न होंगे तो फिर ये सब जो आप श्रद्धा और विश्वास के साथ तालाबों में डालते हैं कहा डालेंगे ? यह ज्वलंत प्रश्न कौन करेगा ? किसे उत्तर देंगे ? समस्या का समाधान कैसे होगा ?

कुल मिलाकर एक ओर तो हर कार्य में तालाब जिनमें अब वस्त्र धोना तथा मल त्यागना भी बढ़ गया, इससे जल प्रदूषण तथा पर्यावरण प्रदूषण भी उत्पन्न हो गया है इससे मुक्ति कैसे मिलेगी ? यह एक बहुत बड़ा सवाल है और इससे भी अधिक बात तो कष्टकारक है वह यह है कि उदाहरण के तौर पर हम लेते हैं कि चन्देलकालीन तालाब जो जनपद महोबा में आज भी मौजूद हैं। इन्होंने लगभग एक हजार वर्ष की आयु या तो पूरी कर ली है या करने जा रहे हैं। सन् 1947 को जब हम आजाद हुए थे इनमें आपार जलराशि थी और इनकी सतह तक जाना आसान कार्य नहीं था। मात्र 50 वर्षों की यात्रा के अन्दर ही ये तालाब सिमटकर उथले हो गए, जिनमें राहिल सागर और कल्याण सागर की स्थिति सर्वाधिक खराब हो गई और बाकी तालाबों में अपनी स्थिति खराब होने की होड़ लगी है।

नगर पालिकाएं तालाबों को ठीक कराने में अक्षम हैं। ग्राम पंचायतों की भूमिका तो एक दिवा-स्वप्न सा है। रही बात सिंचाई विभाग की तो उनके सोच में तालाब का पैमाना बांध के हिसाब का है या बांध के पैमाने से वे तालाब को नापते हैं और पुराव को समाप्त करने की बात ही नहीं करते हैं, तटबन्ध ऊंचा करने की बात की जाती है, फलतः तालाबों को हमारी उपेक्षाएं, सरकारी उदासीनताएं और तालाबों पर बांधों की तकनीक चलाना उनके साथ अन्याय तो है ही समूची मानवता और देश की जनता के साथ भी अन्याय है लेकिन तालाबों की ये उपेक्षा जनता के लिए विशेष कष्ट साध्य हो गयी है।

आज आवश्यकता है कि हम अपने दर्द को दूर करें। इसके लिए जरूरी है तालाबों के दर्दों को सुनें, समझें और दूर करें।

तालाबों के दर्द दूर करने के उपाय

सरकारी नीतियों में संसोधन :—सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि तालाबों के सुधार के लिए शासन स्तर से कुछ नीतिगत् निर्णय लिए जाएं यथा कि:—

(1) टैंकडिवीजन की बहाली और उनमें तैनाती के लिए उनका शैक्षणिक ज्ञान भी ऐसा हो कि तालाबों के रख-रखाव हेतु जो प्रशिक्षित हों उन्हें उपलब्ध कराकर नियुक्ति करें।

(2) तालाबों के पुराव क्षेत्र को साफ करने के लिए अब बड़ी मशीनों की आवश्यकता पड़ेगी तभी यह पुराव समाप्त किया जा सकता है तथा इसमें आने वाले व्यय को उसकी मिट्टी को कृषि कार्य के लिए बेचकर किया जा सकता है।

(3) तालाबों की वैज्ञानिक ढंग से गणना करना जरूरी है।

(4) भू-राजस्व अभिलेखों में जो तालाबों का रकवा (क्षेत्रफल) अंकित है उसके बहाली के लिए प्रयास तेज करना चाहिए।

(5) तालाबों के सुन्दरीकरण की योजनाएं जिला योजना बनाने में प्राथमिकता देना चाहिए।

(6) तालाबों से सिंघाड़ा, कमल एवं मखाना का उत्पादन लेकर उनमें पर्यावरण सन्तुलन एवं स्वच्छीकरण पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(7) स्थानीय आवश्यकतानुसार तालाबों में जल संभरण क्षमता करके एक निश्चित रकवा को जल उपलब्ध कराने की व्यवस्था करके कृषि पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

(8) तालाबों का सुदृढ़ीकरण करने के लिए ठोस निर्णय लिया जाना चाहिए।

(9) तालाबों के जल संग्रहण से उद्यानीकरण को प्रोत्साहन देकर रोजगार के अवसरों को बढ़ाया जाना चाहिए।

(10) जिला प्रशासन के सहयोग से ''जनसहभागिता अभियान'' भी चलाया जा सकता है।

जन-सहभागिता अभियान

(1) जन-सहभागिता अभियान के अर्न्तगत लोगों में जागरूकता पैदा की जाए कि वे भीषण गर्मी के दिनों में तालाबों की मिट्टी खोदकर अपने खेतों में ले जाएं। इसके लिये सघन अभियान चलाकर तालाबों की खुदाई की जा सकती है तथा कुछ हद तक जल संभरण क्षमता का विकास किया जा सकता है।

(2) तालाब से मिट्टी खोदते समय कोई स्तरीय तकनीकी व्यक्ति मौजूद रहना चाहिए ताकि वह यह देखे कि खुदाई क्रमशः हो रही है, कहीं अधिक गहरा कहीं अधिक उथला तो नहीं हो रहा है।

(3) तालाबों की मिट्टी खेतों में जाने से कृषकों को क्या लाभ होगा ? यह भी बताना जरूरी है ताकि लोग आकर्षित होकर मिट्टी ले जाएं।

(4) लोगों में जन-चेतना जगायी जानी चाहिए कि तालाबों में अनावश्यक कोई भी सामग्री न डाले जिससे उसका पुराव न बढ़े। यदि डालें तो निश्चित अवधि तक पुराव साफ करने की व्यवस्था भी लोगों द्वारा स्वयं बनानी चाहिए।

(5) तालाबों के रख-रखाव तथा पुराव को समाप्त करने कराने हेतु अविलम्ब कदम उठाने की आवश्यकता है।

यदि हम वास्तव में अपने सभी जलाशयों को स्वच्छ तथा गहरा एवं सिंचाई हेतु उपयोगी बनाने के प्रयास करें तो समूचे देश की तस्वीर बदल सकती है और एक बार पुनः हम तालाबों के माध्यम से हरीतिमा को बहाल कर पर्यावरण को संरक्षित कर परिवेश सुरभित कर सकते हैं।

स्टेशन रोड, महोबा-210427

1464 HA/2001—7A

राजभाषा-कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियां

1464 HA/2001—7B

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें

1. कासरगोड़ नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की पांचवी अर्धवार्षिक बैठक दिनांक 13-2-2001 को डा. वी. राजगोपाल, निदेशक, केन्द्रीय रोपण फसल अनुसंधान संस्थान, कासरगोड़ की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

2. स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लि., रॉ मेटेरियल्स डिवीजन के संयोजन में दिनांक 20-2-2001 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की छमाही बैठक कोलकाता पोर्ट ट्रस्ट के उपाध्यक्ष श्री टी.के. देवान, आई.ए.एस. की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

3. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, औरंगाबाद की 30वीं बैठक दिनांक 20-2-2001 को श्री ए.एस.सिदधू, आयुक्त केंद्रीय उत्पाद तथा सीमा शुल्क की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

4. नागरकोविल नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की अर्धवार्षिक बैठक दिनांक 27-2-2001 को श्री एल. बालासुब्रमण्यम, वरिष्ठ क्षेत्रीय प्रबंधक, इंडियन ओवरसीज़ बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, नागरकोविल की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

5. केंद्रीय जल और विद्युत अनुसंधान शाला, खड़कवासला, पुणे की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक दिनांक 8 मार्च, 2001 को संपन्न हुई।

6. राजभाषा कार्यान्वयन समिति, भेल, भोपाल की 94वीं बैठक दिनांक 15-3-2001 को श्री समरेंद्र नाथ राय की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

7. दिनांक 16-3-2001 को श्री एस.आई.संपत, उप महाप्रबंधक स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद, अंचल कार्यालय की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

8. क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय, पूर्व क्षेत्र, कलकत्ता के अंतर्गत, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक दिनांक 16-3-2001 को डॉ. पी. रामचंद्र राव, निदेशक की अध्यक्षता में जमशेदपुर में संपन्न हुई।

9. आयुक्त कार्यालय, केंद्रीय उत्पाद एवं शुल्क, इलाहाबाद की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चौथी बैठक श्री एस. चंद्रा, आयुक्त की अध्यक्षता में दिनांक 21-3-2001 को हुई।

10. सेलम नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति को सोलहवीं बैठक दिनांक 27-3-2001 को श्री एम.पी. वेलुसामी आई.टी.एस., महाप्रबंधक, भारत संचार निगम लि., सेलम की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

11. विधि, न्याय और कंपनी मंत्रालय, विधायी विभाग की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक दिनांक 27-3-2001 को संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी (प्रशा.) की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

कार्यशालाएं

1. केंद्रीय रेशम बोर्ड द्वारा दिनांक 9-1-2001 से 11-1-2001 तक तीन दिवसीय पूर्ण कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में अनुवाद, वाक्य रचना, राजभाषा नियम तथा प्रशासनिक शब्दावली जैसे विषयों का समावेश किया गया।

2. कार्पोरेशन बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ द्वारा दिनांक 15-01-2001 एवं 16-01-2001 को लिपिकों की एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया।

3. भारतीय लेखा तथा लेखापरीक्षा विभाग द्वारा 15-01-2001 से 30-01-2001 तक हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

4. हिंदुस्तान जिंक लि. द्वारा हिंदी के सुचारू कार्यान्वयन हेतु कर्मचारियों के लिए 14-02-2001 से 15-02-2001 तक हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

5. केंद्रीय जल और विद्युत अनुसंधानशाला द्वारा दिनांक 25 जनवरी, 2001 को आई-लीप सॉफ्टवेयर पर कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें शब्द रत्न, अक्षर फार विंडोज एवं आई-लीप सॉफ्टवेयरों की विस्तृत जानकारी दी गई ।

6. यूरेनियम कारपोरेशन ऑफ इंडिया लि. द्वारा दिनांक 19-23 फरवरी, 2001 को पांच दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

7. लोक निर्माण विभाग, कार्यालय मुख्य इंजीनियर, अंचल-1 द्वारा 22-23 फरवरी, 2001 को दो दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

8. गैस टरबाइन अनुसंधान स्थापन द्वारा 12 मार्च, 2001 से 15 मार्च, 2001 तक हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

9. आकाशवाणी, बीकानेर द्वारा 19-03-2001 को एक दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में आकाशवाणी बीकानेर से प्रकाशित हिंदी गृह पत्रिका ''मरूवाणी'' का लोकार्पण भी किया गया।

10. नेशनल इन्श्योरेन्स कंपनी लि. द्वारा दिनांक 21-03-2001 को एक दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

11. लघु उद्योग सेवा संस्थान द्वारा दिनांक 21-03-2001 से 23-03-2001 तक 3 दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसका विषय ''कंप्यूटर पर हिंदी'' रहा।

संगोष्ठियां

लघु उद्योग सेवा संस्थान द्वारा दिनांक 23-02-2001 को कोचीन स्थित आयकर कार्यालय में एक दिवसीय राजभाषा संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसके आयोजन का उद्देश्य केन्द्र सरकार के कार्यालयों/बैंकों/उपक्रमों आदि में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग को प्रेरित करना तथा इस दिशा में आने वाली समस्याओं का निवारण करना था।

महासागर विकास विभाग द्वारा दिनांक 22-01-2001 को हिंदी में वैज्ञानिक संगोष्ठी ''समुद्री विज्ञान के दो दशक'' का आयोजन किया गया।

भारत डायनामिक्स लि. द्वारा दिनांक 24-01-2001 को एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

विशाखापट्नम इस्पात संयंत्र द्वारा दिनांक 15-03-2001 को ''औद्योगिक संगठनों में पारस्परिक सहयोग और उत्पादकता'' नामक विषय पर राजभाषा संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं/जानकारियां

प्रधानमंत्री से सभी मंत्रियों को पत्र

प्रधानमंत्री जी ने दिनांक 22-09-2000 को आयोजित केंद्रीय हिंदी समिति की बैठक की अध्यक्षता करते हुए इस बात पर चिंता व्यक्त की कि मंत्रालयों/विभागों आदि में राजभाषा हिंदी में कार्य किए गए जाने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण अभी तक नहीं हो पाया। इस बैठक के पश्चात् केन्द्रीय मंत्रियों को सम्बोधित अपने 23 दिसम्बर, 2000 के पत्र में उन्होंने इस दिशा में निम्नलिखित कदम उठाने का अनुरोध किया है :—

1. शीर्षस्थ प्रशासनिक बैठकों में विचार-विमर्श और कार्यवाही हिंदी में करने को प्रोत्साहित किया जाए।

2. राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) तथा नियम 5 का अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। इनकी उपेक्षा करने वाले अधिकारियों को लिखित परामर्श दिया जाए कि वे भविष्य में इस प्रवृत्ति से बचें।

3. राजभाषा हिंदी में अच्छा कार्य करने वाले अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में उनके सराहनीय कार्य का उल्लेख किया जाए।

4. राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के अवसरों पर जहां कहीं संभव हो भाषण हिंदी में हों। विदेशों में जाने वाले भारतीय प्रतिनिधि मंडलों के सदस्यों द्वारा हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए तथा आवश्यकतानुसार भारतीय दूतावास के माध्यम से दुभाषी सेवाएं ली जाएं।

केंद्रीय हिंदी समिति की पहली उपसमिति की बैठक

केंद्रीय हिंदी समिति की पहली उप-समिति की बैठक माननीय गृह मंत्री जी की अध्यक्षता में दिनांक 8-1-2001 को आयोजित की गई। प्रधान मंत्री जी की अध्यक्षता में आयोजित दिनांक 22-9-2000 को हुई केंद्रीय हिंदी समिति की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसरण में इस उप-समिति का गठन किया गया है। इस उपसमिति की कार्यसूची में उन सभी बिन्दुओं पर विस्तार से विचार किया गया जो कि राजभाषा हिंदी के प्रचार और प्रसार से जुड़े थे तथा जिन्हें दिनांक 22-9-2000 को आयोजित केंद्रीय हिंदी समिति की बैठक में सुझाया गया था। उपसमिति द्वारा की गई संस्तुतियों पर केंद्रीय हिंदी समिति की अगली बैठक में निर्णय लिया जाएगा।

हिंदी सलाहकार समितियों की बैठकें

मंत्रालयों में राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन को सुचारू रूप से बढ़ाने के उद्देश्य से हिंदी सलाहकार समितियां गठित की जाती हैं। अब तक 39 हिंदी सलाहकार समितियां गठित हो चुकी हैं। इनमें से दिनांक 29-1-2001 को श्रम मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की बैठक आयोजित की गई।

राष्ट्रभाषा प्रवीण और हिंदी विद्वान परीक्षाओं को मान्यता मिली

उस्मानिया विश्वविद्यालय ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार-सभा मद्रास और हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद की क्रमशः राष्ट्रभाषा प्रवीण और हिंदी विद्वान को उस्मानिया विश्वविद्यालय की प्राच्य भाषाओं के तहत बी.ए. (भाषा) पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए मान्यता प्रदान कर दी।

आज यहां जारी एक प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार उपरोक्त परीक्षाओं के उत्तीर्ण छात्रों को बी.ए. (भाषा) में प्रवेश के लिए उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्री-डिग्री पाठ्यक्रम के 1 और 2 वर्ष के अंग्रेजी-पत्र उत्तीर्ण करने होंगे। आवेदन-पत्र उस्मानिया विश्वविद्यालय प्रेस पर 10 रुपए में उपलब्ध हैं।

विज्ञप्ति के अनुसार, पूर्णतः भरे हुए आवेदन आवश्यक मूल प्रमाण-पत्रों और परीक्षा नियंत्रक, उ.वि.वि. के नाम पर जारी 170 रुपए के मांग-पत्र के साथ 8 फरवरी तक पंडित नरेन्द्र ओरिएण्टल कालेज, केशव मेमोरियल भवन, नारायणमुड़ा और अभ्युदय ईवनिंग ओरिएण्टल कालेज, जियामुड़ा में जमा कराए जा सकते हैं।

आदेश-अनुदेश

राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय का दिनांक 13/02/2001 का संकल्प सं. 14039/4/99 रा.भा. (प्रशि.)

संसदीय राजभाषा समिति के तीसरे प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों के संबंध में राष्ट्रपति के आदेश राजभाषा अधिनियम, 1963 (यथासंशोधित, 1967) की धारा 4 (4) के अंतर्गत इस विभाग के दिनांक 04 नवम्बर, 1991 के संकल्प संख्या 13015/1/91-रा.भा.(घ) के द्वारा सूचित किए गए थे। उस संकल्प के पैरा 5 के तहत दिए गए आदेश में आंशिक संशोधन करते हुए राष्ट्रपति ने समसंख्यक संकल्प दिनांक 16 जुलाई, 1999 के तहत यह आदेश दिया था कि ''क'' एवं ''ख'' क्षेत्रों में स्थिति कार्यालयों के कर्मचारियों को हिंदी का प्रशिक्षण वर्ष 2000 के अंत तक तथा ''ग'' क्षेत्र में स्थित कार्यालयों के कर्मचारियों को वर्ष 2003के अंत तक पूरा कर लिया जाए।

उक्त संकल्प में पुन: आंशिक संशोधन करते हुए राष्ट्रपति ने अब यह आदेश दिया है कि सभी क्षेत्रों अर्थात् ''क'', ''ख'' एवं ''ग'' क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों के कर्मचारियों को हिंदी का प्रशिक्षण वर्ष 2005 के अंत तक पूरा कर लिया जाए।

विषय :—हिंदी सलाहकार समिति की बैठक में लिए गए निर्णयों पर अनुवर्ती कार्रवाई।

गृह मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की 36वीं बैठक माननीय गृह मंत्री जी की अध्यक्षता में दिनांक 17 अक्तूबर, 2000 को हुई। इस बैठक का कार्यवृत दिनांक 30 नवम्बर, 2000 के समयंख्यक कार्यालय ज्ञापन के साथ आवश्यक कार्रवाई के लिए परिचालित किया जा चुका है। मंत्रालय के सभी अधिकारियों का ध्यान कार्यवृत्त की निम्नलिखित मदों की ओर आकर्षित किया जाता है:—

(1) उच्चाधिकारियों द्वारा सरकारी कार्य हिंदी में करने के लिए विशेष रूप से पहल की जाए जिससे निचले कार्मिकों को भी हिंदी में कार्य करने की प्रेरणा मिले

बैठक में इस बात पर बल दिया गया कि उच्च अधिकारियों द्वारा हिंदी में करने की पहल की जाए ताकि कर्मचारियों को भी हिंदी में काम करने की प्रेरणा मिल सके। संघ का सरकारी कार्य राजभाषा हिंदी में करने के लिए वर्ष 2000—2001 के वार्षिक कार्यक्रम में यह अपेक्षा की गई कि :

''भारतीय प्रशासनिक सेवा और अन्य अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों के लिए राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी में प्रशिक्षण के दौरान हिंदी भाषा का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप

से दिया जाता है ताकि सरकारी कामकाज में वे इसका प्रयोग कर सकें। परन्तु अधिकांश अधिकारी सेवा में आने के पश्चात् हिंदी का प्रयोग सरकारी कामकाज में नहीं करते। इससे उनके अधीन कार्य कर रहे अधिकारियों/कर्मचारियों में सही संदेश नहीं जाता। परिणामस्वरूप, सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग अपेक्षित मात्रा में नही हो पाता। मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों/ उपक्रमों आदि के वरिष्ठ अधिकारियों का यह संवैधानिक दायित्व है कि वे अपने सरकारी काम काज में अधिक से अधिक हिंदी का प्रयोग करें। इससे उनके अधीन कार्य कर रहे अधिकारियों/ कर्मचारियों को प्रेरणा मिलेगी तथा राजभाषा नीति के अनुपालन को गति मिलेगी।"

अत: मंत्रालय के सभी अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे स्वयं फाइलों पर छोटी-छोटी टिप्पणी हिंदी में लिखें तथा छोटी-छोटी डिक्टेशन हिंदी में दें ताकि अधीनस्थ कर्मचारियों को भी हिंदी में काम करने की प्रेरणा मिले। शुरुआत के तौर पर प्रतिदिन कम से कम दो फाइलों पर हिंदी में काम किया जाए।

(2) कुछ अनुभागों/डेस्कों में पूर्णतया हिंदी में काम करने की शुरूआत की जाए और ऐसे अनुभागों की संख्या को निरन्तर बढ़ाया जाए

मंत्रालय के कुछेक अनुभागों द्वारा हिंदी में कार्य करने के लिए छांटे गए विषयों पर चर्चा करते हुए बैठक में यह सुझाव दिया गया कि कुछ अनुभागों/डेस्कों में सारा काम हिंदी में करने की शुरूआत की जाए और ऐसे अनुभागों की संख्या को निरंतर बढ़ाया जाए।

संघ का सरकारी कार्य राजभाषा हिंदी में करने के लिए वर्ष 2000—2001 के वार्षिक कार्यक्रम में भी ऐसे अनुभागों की न्यूनतम संख्या 7 निर्धारित की गई है जिनमें सारा कार्य हिंदी में हो।

इस संबंध में उल्लेखनीय है कि जुलाई, 1997 में संसदीय राजभाषा समिति की साक्ष्य बैठक के दौरान तत्कालीन गृह सचिव द्वारा भी उक्त समिति को यह आश्वासन दिया गया था कि "गृह मंत्रालय में राजभाषा हिंदी का प्रयोग बढ़ाया जाएगा और प्रत्येक अनुभाग में कम से कम दो विषयों पर समस्त कार्रवाई हिंदी में ही की जाएगी"। संसंदीय राजभाषा समिति को दिए गए इस आश्वासन की पूरा करने के लिए सभी अधिकारियों/अनुभागों को समय-समय पर लिखा गया है। मेरे ध्यान में यह बात लाई गई है कि कुछ अनुभागें/प्रभागों द्वारा यह आश्वासन अभी पूरा किया जाना है।

मंत्रालय के लगभग सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है तथा मंत्रालय में सभी प्रकार की यांत्रिक सुविधाएं जैसे इलैक्ट्रानिक टापइराइटर, कंप्यूटर आदि द्विभाषी रूप में उपलब्ध हैं। कार्यविधि साहित्य भी द्विभाषी रूप में उपलब्ध है। इसके

अलावा पर्याप्त संख्या में अवर श्रेणी लिपिकों और स्टेनोग्राफरों को क्रमशः हिंदी टाइपिंग और हिंदी स्टेनोग्राफी का प्रशिक्षण दिलाया जा चुका है परन्तु उनकी सेवाओं का उपयोग नहीं हो रहा है।

अतः सभी संयुक्त सचिव यह सुनिश्चित करें कि उनके प्रभाग के सभी अनुभागों/डेस्कों में कम से कम दो विषयों पर सारा कार्य हिंदी में किया जाए तथा अपने प्रभाग में एक ऐसे अनुभाग/डेस्क का चयन करें जिसमें सारा कार्य हिंदी में किया जाए।

राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) का दिनांक 19 मार्च, 2001 का का.ज्ञा.सं. 14034/16/2000 राभा (प्रशि.)

विषय : हिंदी में काम करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों की सहायता के लिए कार्यशालाओं का आयोजन - मानदेय की धनराशि बढ़ाने के संबंध में

उपर्युक्त विषय पर इस विभाग केक्रमशः दिनांक 15-2-1990 तथा 20-11-1991 के कार्यालय ज्ञापन संख्या 14025/6/89-रा.भा.(घ) में आंशिक संशोधन करते हुए मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि हिंदी में सरकारी कामकाज करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों की सहायता के लिए भारत सरकार के मंत्रालयों/विभागों आदि द्वारा आयोजत की जाते वाली हिंदी कार्यशालाओं, में व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित अतिथि वक्ताओं तथा केंद्रीय सरकार के अधिकारियों/कर्मचारियों को देय मानदेय की राशि रुपये 240/- (रुपए दो सौ चालीस), प्रति 60 मिनट (एक घंटा) की दर से निर्धारित की गई है। किसी एक वक्ता को एक कार्यशाला में व्याख्यान देने के लिए अधिकतम मानदेय राशि रुपये 2,400/- (रुपए दो हजार चार सौ) से अधिक नहीं होगी। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि एक कार्यशाला में व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित सभी अतिथि वक्ताओं को दिए जाने वाले मानदेय की कुल राशि किसी भी हालत में रुपये 7,200/- (रुपए सात हजार दो सौ) से अधिक नहीं होगी।

2. इसे वित्त प्रभाग,गृह मंत्रालय द्वारा उनकी दिनांक 23-2-2001 की अ.वि. टिप्पणी संख्या एच.-14/2001-वित्त II के तहत दी गई सहमति से जारी किया गया है।

3. ये आदेश 01 अप्रैल, 2001 से प्रभावी होंगे।

राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) का दिनांक 1 मई, 2001 का का. ज्ञापन स. 13011/8/2001 रा.भा. (नी.स.)

विषय :—मंत्रालयों/विभागों, सम्बद्ध/अधीनस्थ कार्यालयों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, स्वायतशासी निकायों/प्रशिक्षण संस्थानों आदि में शब्दकोश (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) और विभिन्न विषयों की अद्यतन शब्दावलियों की खरीद

राजभाषा विभाग द्वारा केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, नई दिल्ली द्वारा चलाए जा रहे त्रैमासिक अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को और अधिक प्रयोजन मूलक बनाने के लिए प्रतिभागियों से चर्चा की गई। पाठ्यक्रम में आए अधिकांश प्रतिभागियों ने बताया कि उन्हें अपने मंत्रालयों/विभागों में अनुवाद कार्य करने में विभिन्न शब्दों तथा संकल्पनाओं के हिंदी पर्यायों को समझने में कठिनाई महसूस होती है। शब्दों तथा संकल्पनाओं के पर्याय ढूंढ़ने के लिए शब्दकोश सबसे महत्वपूर्ण साधन होते हैं जो अभी तक कई मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों में उपलब्ध नहीं हो पाए हैं। कुछ मंत्रालयों में बहुत पुराने संकलन हैं और नए शब्दों तथा नई संकल्पनाओं का उनमें समावेश न होने की वजह से वे उनके लिए उपयोगी नहीं हैं।

2. अत: सभी मंत्रालयों/विभागों आदि से अनुरोध है वे अपने-अपने पुस्तकालयों में अद्यतन और आधुनिक शब्दकोशों की खरीद करवाएं। अपनी विभागीय शब्दावलियों की भी समय-समय पर समीक्षा करें और उनमें आवश्यक परिवर्तन करते हुए नई संकल्पनाओं के लिए नए शब्दों का समावेश करें। ऐसा करने से पहले वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली से संपर्क अवश्य कर लिया जाए ताकि हिंदी में नए शब्दों/संकल्पनाओं का मानकीकरण हो सके। इसके अतिक्ति अधिकारियों/कर्मचारियों के हिंदी भाषा के ज्ञान में वृद्धि के लिए तथा उन्हें विभागीय कार्य हिंदी में करने में सुविधा प्रदान करने के लिए प्रत्येक मंत्रालय/विभाग द्वारा निकाली जा रही हिंदी पत्रिका के प्रत्येक अंक में अपने मंत्रालय/विभाग से संबंधित विषयों के कुछ (यथा 50) अंग्रेजी के नए शब्द उनके हिंदी पर्यायों सहित प्रकाशित करें। साथ ही 10-15 संकल्पनाओं के हिंदी पर्याय और उनकी परिभाषा भी प्रकाशित करें.. प्रकाशित पत्रिकाओं की एक-एक प्रति निदेशक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, 8 वां तल, पर्यावरण भवन, सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली को नियमित रूप से भिजवाएं।

3. सभी मंत्रालयों/विभागों से यह भी अनुरोध है कि वे अपने सम्बद्ध/अधीनस्थ कार्यालयों/ सार्वजनिक उपक्रमों/स्वायत निकायों/बैंकों को भी समुचित निदेश भिजवा दें ताकि वे भी आवश्यकतानुसार अपने कार्यालयों में आधुनिक/अद्यतन शब्दकोशों की खरीद करें और यह सुनिश्चित करें कि हिंदी कार्य के लिए तैनात हर कर्मचारी/अधिकारी को अंग्रेजी-हिंदी, हिंदी अंग्रेजी शब्दकोश और शब्दावलियां उपलब्ध हों।

केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की गतिविधियां

केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो (राजभाषा विभाग) द्वारा वर्ष 2001—2002 में आयोजित किए जाने वाले अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का प्रस्तावित कैलेंडर

क्र.स.	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि और प्रशिक्षणार्थियों की संख्या	प्रशिक्षण पाठ्यक्रम प्रारंभ होने की तारीख	परीक्षा की तारीख	प्रशिक्षण केंद्र
01.	त्रैमासिक अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम	तीन माह 480 प्रशिक्षणार्थी प्रति वर्ष	1 अप्रैल से 30 जून, 2001 1 जुलाई से 30 सितंबर, 2001 1 अक्तूबर से 31 दिसंबर, 2001 1 जनवरी से 31 मार्च, 2002	सत्र की समाप्ति पर	1. नई दिल्ली 2. बेंगलूर 3. कलकत्ता 4. मुंबई
02.	उच्चस्तरीय/ पुनश्चर्या प्रशिक्षण पाठ्यक्रम	पांच कार्यदिवस 90 प्रशिक्षणार्थी प्रतिवर्ष	21-05-2001 से 25-05-2001 18-06-2001 से 22-06-2001 06-08-2001 से 10-08-2001 08-10-2001 से 12-10-2001 10-12-2001 से 14-12-2001 11-02-2002 से 15-02-2002		नई दिल्ली (मुख्यालय)
03.	संक्षिप्त अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम	पांच कार्यदिवस 400 प्रशिक्षणार्थी प्रतिवर्ष	अप्रैल से जून 2001 तक 4 कार्यक्रम जुलाई से सितंबर 2001 तक 4 कार्यक्रम अक्तूबर से दिसंबर, 2001 तक 4 कार्यक्रम जनवरी, 2002 से मार्च 2002 तक 4 कार्यक्रम	कोई परीक्षा नहीं	किसी भी कार्यालय/नगर में, जहां से मांग प्राप्त होती है
04.	विशेष अनुवाद पाठ्यक्रम	21 कार्यदिवस 50 प्रशिक्षणार्थी प्रतिवर्ष	अप्रैल से सितंबर 2001 तक 1 कार्यक्रम अक्तूबर से मार्च, 2002 तक 1 कार्यक्रम	पाठ्यक्रम की समाप्ति पर	किसी भी कार्यालय/नगर में, जहां से मांग प्राप्त होती है।

संपर्क सूत्र :

छात्रावास का पता

उत्तरांचल के लिए	संयुक्त निदेशक (मुख्यालय) केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, 8वां तल, बी--ब्लॉक, पर्यावरण भवन, सी.जी.ओ. काम्पलैक्स लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 दूरभाष : 4362151, 4362988	केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो छात्रावास, क्वार्टर सं. 876 से 890 सेक्टर-7, पुष्प विहार, नई दिल्ली-110017 दूरभाष : 6862873
दक्षिणांचल के लिए	संयुक्त निदेशक, अनुवाद प्रशिक्षण केंद्र, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, 5वां तल, केंद्रीय सदन, डी-ब्लॉक, 17वां मेन, दूसरा ब्लॉक, कोरमंगला बेंगलूर-560031 दूरभाष : 5637952, 5531946	छात्रावास उपलब्ध नहीं है।
पूर्वांचल के लिए	संयुक्त निदेशक, अनुवाद प्रशिक्षण केंद्र, केंद्रीय अुनवाद ब्यूरो, 67-बी, बालीगंज सर्कुलर रोड, कलकत्ता-700 019 दूरभाष : 2476799, 2406043	केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो छात्रावास, 67-बी बालीगंज सर्कुलर रोड, कलकत्ता-700019 दूरभाष : 2476799, 2406043
पश्चिमांचल के लिए	संयुक्त निदेशक, अनुवाद प्रशिक्षण केंद्र, कामर्स हाउस, तीसरा माला, बेलार्ड एस्टेट, करीमभाई रोड, मुंबई-400038 दूरभाष : 2611823, 2619478	छात्रावास उपलब्ध नहीं

राजभाषा विभाग द्वारा वर्ष 2001-2002 में विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से प्रायोजित करवाए जाने वाले हिंदी में कंप्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम

संस्था	स्थान	प्रस्तावित तिथि	वरीयता
राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र	नई दिल्ली	2-6 जुलाई, 2001	सहायक स्तर के अधिकारियों के लिए
		3-7 दिसम्बर, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	चंडीगढ़	6-10 अगस्त, 2001	कंप्यूटर का कोई ज्ञान न रखने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
		14-18 जनवरी, 2002	सभी स्तर के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
	लखनऊ	27-31 अगस्त, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
		5-9 नवम्बर, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
	पुणे	23-27 जुलाई, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
		10-14 दिसम्बर, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
	भोपाल	25-29 जून, 2001	कंप्यूटर का कोई ज्ञान न रखने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
		29 अक्तूबर से 2 नवम्बर, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
		28 जनवरी से 1 फरवरी, 2002	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	कोलकाता	16-20 जुलाई, 2001	कंप्यूटर का कोई ज्ञान न रखने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
		19-23 नवम्बर, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए

संस्था	स्थान	प्रस्तावित तिथि	वरीयता
		11-15 फरवरी, 2002	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	हैदराबाद	20 मई से 1 जून, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
		10 से 14 सितम्बर, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	बेंगलूर	20-24 अगस्त, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
		10-14 दिसम्बर, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
		25 फरवरी से 1 मार्च, 2002	कंप्यूटर का कोई ज्ञान न रखने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
	चेन्नई	8-12 अक्तूबर, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
		21-25 जनवरी, 2002	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
सीएमसी लि.	मुंबई	5-9 नवम्बर, 2001	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
		10-14 दिसम्बर, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	कोलकाता	23-27 जुलाई, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
		18-22 मार्च, 2002	सहायक स्तर केअधिकारियों के लिए
	दिल्ली	27-31 अगस्त, 2001	कंप्यूटर का कोई ज्ञान न रखने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए

संस्था	स्थान	प्रस्तावित तिथि	वरीयता
		4-8 सितम्बर, 2001	सहायक स्तर के अधिकारियों के लिए
		21-25 जनवरी, 2002	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	चेन्नई	25-29 जून, 2001	सहायक स्तर के अधिकारियों के लिए
		17-21 सितम्बर, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	बेंगलूर	15—19 अक्तूबर, 2001	सभी स्तर के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
	हैदराबाद	6-10 अगस्त, 2001	सभी स्तर के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
	जयपुर	5-9 फरवरी, 2002	सभी स्तर के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
ई. आर. एण्ड डी.सी.आई.	ई. आर. एण्ड डी.सी.आई.	2 से 6 जुलाई, 2001	सभी स्तर के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
	सी.-4, सै.-10 नोएडा-201301	3 से 7 सितम्बर, 2001	अनुभाग अधिकारी और उच्च स्तर के अधिकारियों के लिए
	उत्तर प्रदेश	5 से 9 नवम्बर, 2001	सहायक स्तर के अधिकारियों के लिए
		7 से 11 जनवरी, 2002	कंप्यूटर का कोई ज्ञान न रखने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए
	गुवाहाटी	4 से 8 मार्च, 2002 (दो कार्यक्रम)	सभी स्तर के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए

नोट :—(1) अपने निकटतम प्रशिक्षण केन्द्र के लिए ही प्रशिक्षार्थियों को नामित करें।

(2) राजभाषा विभाग से नामांकन स्वीकार हो जाने का पत्र प्राप्त होने पर ही प्रशिक्षार्थियों को कार्य मुक्त किया जाए।

(3) आवेदन पत्र प्रशिक्षार्थी के प्रशासनिक कार्यालय से अग्रेषित होकर राजभाषा विभाग में आना चाहिए।

MGIPRRND—1464 HA/2001—3,000 Copies.